सन्मति साहित्य-रत्नमाला का सत्तावनवाँ रत्न

पच्चीस बोल

व्याख्याकार
विजय मुनि शास्त्री, साहित्य रत्न



सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा.

व्याख्याकार :
विजय मुनि शास्त्री, साहित्य रत्न
प्रकाशक :
सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा
मुद्रक .
प्रेम प्रिंटिंग प्रेस, आगरा
प्रथम प्रवेश :
सन् १९६०
मूल्य :
पचास नये पैसे

पच्चीस बोल • एक मूल्यांकन

— सुबोध मुनि

○'जैन दर्शन' के मूल सूत्र सिद्धान्तों का ज्ञान करने वाले प्रत्येक व्यक्ति का साक्षात्कार सर्व प्रथम इसी लघुतम ग्रन्थ से होता है। यही वह सूत्रात्मक ग्रन्थ है, जिसको हृदयंगम कर, दर्शन शास्त्र की गहराई में उतरा जाता है, और इसी के माध्यम से आगम ग्रन्थों के विशाल सागर को पार किया जाता है।

○इस दृष्टि से यह लघुतम ग्रन्थ अत्यन्त मूल्यवान है। इस ग्रन्थ की व्याख्या अब तक प्राप्त नहीं थी। अतः कोमल मति बालकों को इस का रहस्य समझने में, बड़ी असुविधा थी इस व्याख्या से उक्त समस्या का हल हो गया—एक सुन्दर रूप में।

○मेरा विश्वास है, इस मूल सूत्र ग्रन्थ की व्याख्या लिखकर श्री विजय मुनि जी ने तत्त्व जिज्ञासुओं का काफी उपकार किया है। व्याख्या शैली सुन्दर, सरस और सरल है। इससे बालक से लेकर वृद्ध तक सभी लाभ उठा सकते हैं।

प्रकाशक की ओर से

'पच्चीस बोल' को नये रूप में, पाठकों के हाथों में समर्पित करते हुए हम महान् हर्ष है। यह एक लघु, पर साथ ही महत्त्व पूर्ण सिद्धान्त ग्रन्थ है। सन्त और गृहस्थ प्राय सभी इसको याद करते हैं। शास्त्र के गुरु गम्भीर ज्ञान को समझने के लिए पच्चीस बोल एक चाबी है।

लाला मक्खनलाल जी हमारी समाज के एक अनुभवी एव वयोवृद्ध श्रावक हैं। आपकी यह बहुत दिनों से अभिलाषा थी कि पच्चीस बोल पर एक लघु व्याख्या भी हो, जो सरल एव सुबोध भाषा में हो। आप ने अपनी यह भावना उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्द्र जी महाराज की सेवा मे व्यक्त की। फलत उपाध्याय श्री जी महाराज ने अपना स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण यह कार्य अपने सुयोग्य शिष्य विजय मुनि जी को करने का आदेश दिया।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन में लाला मक्खनलाल जी ने जो अर्थ सहायता की है, इसके लिए हम लाला जी का सस्था की ओर से धन्यवाद करते हैं। आशा है, भविष्य मे भी उनकी ओर से हम इस प्रकार की सहायता मिलती रहेगी।

प्रस्तुत पुस्तक पाठशाला, विद्यालय और स्कूल के छात्रों को ध्यान में रखकर लिखी गई है। छात्र एव छात्राएं यदि इस पुस्तक का पढ़कर अपने ज्ञान की वृद्धि करेंगे, तो हमारा यह प्रयास सफल होगा।

मन्त्री—सोनाराम जैन

पच्चीस बोल

[मूल]

१

बोल पहला : गति चार

१ नरक गति　　३ मनुष्य गति
२ तिर्यंच गति　　४ देव गति

★

२

बोल दूसरा : जाति पांच

१ एकेन्द्रिय जाति　　३ त्रीन्द्रिय जाति
२ द्वीन्द्रिय जाति　　४ चतुरिन्द्रिय जाति
५ पञ्चेन्द्रिय जाति

★

३

बोल तीसरा : काय छह

१ पृथ्वी काय　　४ वायु काय
२ अप् काय　　५ वनस्पति काय
३ तेजस् काय　　६ त्रस काय

★

४

बोल चौथा : इन्द्रिय पाच

१ श्रोत्र इन्द्रिय ३ घ्राण इन्द्रिय
२ चक्षुष् इन्द्रिय ४ रसन इन्द्रिय
५ स्पर्शन इन्द्रिय

★

५

बोल पाँचवाँ : पर्याप्ति छह

१	आहार	पर्याप्ति
२	शरीर	पर्याप्ति
३	इन्द्रिय	पर्याप्ति
४	श्वासोच्छ्वास	पर्याप्ति
५	भाषा	पर्याप्ति
६	मन	पर्याप्ति

★

६

बोल छठा : प्राण दश

१ श्रोत्र इन्द्रिय बल प्राण
२ चक्षुष् इन्द्रिय बल प्राण

३ घ्राण इन्द्रिय बल प्राण
४ रसन इन्द्रिय बल प्राण
५ स्पर्शन इन्द्रिय बल प्राण

६ मनो - बल प्राण
७ वचन बल प्राण
८ काय बल प्राण

९ श्वासोच्छ्वास-बल प्राण
१० आयुष्य बल प्राण

★

७

बोल सातवाँ • शरीर पाँच

१ औदारिक शरीर
२ वैक्रिय शरीर
३ आहारक शरीर
४ तैजस शरीर
५ कार्मण शरीर

★

बोल आठवाँ : योग पन्द्रह

चार मन के

१ सत्य मनो - योग
२ असत्य मनो - योग
३ मिश्र मनो - योग
४ व्यवहार मनो - योग

चार वचन के

१ सत्य वचन - योग
२ असत्य वचन - योग
३ मिश्र वचन - योग
४ व्यवहार वचन- योग

सात काय के

१ औदारिक काय - योग
२ औदारिक-मिश्र काय - योग
३ वैक्रिय काय - योग
४ वैक्रिय-मिश्र काय - योग
५ आहारक काय - योग
६ आहारक-मिश्र काय - योग
७ कार्मण काय - योग

☆

बोल नौवाँ उपयोग बारह

पाँच ज्ञान

१ मति ज्ञान　　३ अवधि ज्ञान
२ श्रुत ज्ञान　　४ मन पर्याय ज्ञान
५ केवल ज्ञान

तीन अज्ञान

१ मति अज्ञान
२ श्रुत अज्ञान
३ अवधि अज्ञान (विभंग ज्ञान)

चार दर्शन

१ चक्षुर् दर्शन　　३ अवधि दर्शन
२ अचक्षुर् दर्शन　　४ केवल दर्शन

★

रसन इन्द्रिय के पांच विषय

१	अम्ल रस	३	कटु रस
२	मधुर रस	४	कषाय रस

५ तिक्त रस

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषय

१	शीत स्पर्श	५	लघु स्पर्श
२	उष्ण स्पर्श	६	गुरु स्पर्श
३	रूक्ष स्पर्श	७	मृदु स्पर्श
४	स्निग्ध स्पर्श	८	कर्कश स्पर्श



१३
बोल तेरहवाँ दश प्रकार का मिथ्यात्व

१	जीव को	अजीव	समझना	मिथ्यात्व
२	अजीव को	जीव	समझना	मिथ्यात्व
३	धर्म को	अधर्म	समझना	मिथ्यात्व
४	अधर्म को	धर्म	समझना	मिथ्यात्व
५	साधु को	असाधु	समझना	मिथ्यात्व
६	असाधु को	साधु	समझना	मिथ्यात्व

७ संसारमार्ग को मोक्षमार्ग समझना मिथ्यात्व
८ मोक्षमार्ग को संसारमार्ग समझना मिथ्यात्व
९ मुक्त को अमुक्त समझना मिथ्यात्व
१० अमुक्त को मुक्त समझना मिथ्यात्व

★

१४
बोल चौदहवाँ नव तत्त्व के ११५ भेद

नव तत्त्व

१ जीव तत्त्व	५ आस्रव तत्त्व
२ अजीव तत्त्व	६ संवर तत्त्व
३ पुण्य तत्त्व	७ निर्जरा तत्त्व
४ पाप तत्त्व	८ बन्ध तत्त्व

९ मोक्ष तत्त्व

जीव तत्त्व के चौदह भेद

१ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त
२ सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त
३ बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त

४ वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त
[redacted] द्वीन्द्रिय पर्याप्त
६ द्वीन्द्रिय अपर्याप्त
७ त्रीन्द्रिय पर्याप्त
८ त्रीन्द्रिय अपर्याप्त
९ चतुरिन्द्रिय पर्याप्त
१० चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त
११ अमज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त
१२ असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त
१३ सज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त
१४ मज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त

अजीव तत्त्व के चौवह भेद

धर्मास्तिकाय के तीन भेद

१ स्कन्ध २ देश
३ प्रदेश

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद

१ स्कन्ध २ देश
३ प्रदेश

आकाशास्ति काय के तीन भेद

१ स्कन्ध　　२ देश

३ प्रदेश

१ दशवा काल

पुद्गलास्ति काय के चार भेद

१ स्कन्ध　　३ प्रदेश
२ देश　　४ परमाणु

पुण्य तत्त्व के नव भेद

१ अन्न पुण्य　　५ वस्त्र पुण्य
२ पान पुण्य　　६ मन पुण्य
३ स्थान पुण्य　　७ वचन पुण्य
४ शय्या पुण्य　　८ काय पुण्य
९ नमस्कार पुण्य

पाप तत्त्व के अठारह भेद

१ प्राणातिपात　　४ मैथुन
२ मृषावाद　　५ परिग्रह
३ अदत्तादान　　६ क्रोध

७ मान
८ माया
९ लोभ
१० राग
११ द्वेष
१२ कलह
१३ अभ्याख्यान
१४ पैशुन्य
१५ पर-परिवाद
१६ रति-अरति
१७ मायामृषा
१८ मिथ्यादर्शन

आस्रव तत्त्व के बीस भेद

पाच अव्रत

१ प्राणातिपात
२ मृषावाद
३ अदत्तादान
४ मैथुन
५ परिग्रह

पाच इन्द्रिय

१ श्रोत्र इन्द्रिय - प्रवृत्ति
२ चक्षुष् इन्द्रिय - प्रवृत्ति
३ घ्राण इन्द्रिय - प्रवृत्ति
४ रसन इन्द्रिय - प्रवृत्ति
५ स्पर्शन इन्द्रिय - प्रवृत्ति

पाच आस्रव

१ मिथ्यात्व आस्रव रखना ।
२ अविरति आस्रव रखना ।
३ प्रमाद आस्रव
४ कषाय आस्रव
५ अशुभ योग आस्रव

तीन योग

१ मन प्रवृत्ति
२ वचन प्रवृत्ति
३ काय प्रवृत्ति

दो अयतना

१ भाण्डोपकरण, अयतना से लेना [illegible]
२ सूचि कुशाग्रमात्र, अयतना से लेना [illegible]

संवर तत्त्व के बीस भेद

पाच व्रत

१ प्राणातिपात विरमण
२ मृषावाद विरमण

३ अदत्तादान - विरमण
४ अब्रह्मचर्य - विरमण
५ परिग्रह - विरमण

पांच इन्द्रिय

१ श्रोत्र इन्द्रिय - निग्रह
२ चक्षुष् इन्द्रिय - निग्रह
३ घ्राण इन्द्रिय - निग्रह
४ रसन इन्द्रिय - निग्रह
५ स्पर्शन इन्द्रिय - निग्रह

पांच संवर

१ सम्यक्त्व संवर
२ विरति संवर
३ अप्रमाद संवर
४ अकषाय संवर
५ शुभ योग संवर

तीन योग

१ मनो - निग्रह
२ वचन - निग्रह
३ काय - निग्रह

दा यतना

१ भाण्डोपकरण, यतना से लेना, रखना।
२ सूचि कुशाग्र मात्र, यतना से लेना, रखना।

निर्जरा तत्व के बारह भेद

१ अनशन तप
२ ऊनोदरी तप
३ भिक्षाचरी तप
४ रस-परित्याग तप
५ काय क्लेश तप
६ प्रति सलीनता तप

७ प्रायश्चित्त तप
८ विनय तप
९ वैयावृत्य तप
१० स्वाध्याय तप
११ ध्यान तप
१२ व्युत्सर्ग तप

बन्ध तत्व के चार भेद

१ प्रकृति बन्ध
२ स्थिति बन्ध

३ अनुभाग बन्ध
४ प्रदेश बन्ध

मोक्ष-तत्त्व के चार भेद

१ सम्यग् ज्ञान	३ सम्यक् चारित्र
२ सम्यग् दर्शन	४ सम्यक् तप



१५
बोल पन्द्रहवाँ : आत्मा आठ

१ द्रव्य आत्मा
२ कषाय आत्मा
३ योग आत्मा
४ उपयोग आत्मा
५ ज्ञान आत्मा
६ दर्शन आत्मा
७ चारित्र आत्मा
८ वीर्य आत्मा



बोल सोलहवाँ • दण्डक चौबीस

सात नरक का एक दण्डक

१ रत्न प्रभा
२ शर्करा प्रभा
३ बालुका प्रभा
४ पङ्क प्रभा
५ धूम प्रभा
६ तम प्रभा
७ महातम प्रभा

दश भवन-पति के दश दण्डक

१ असुर कुमार
२ नाग कुमार
३ सुपर्ण कुमार
४ विद्युत् कुमार
५ अग्नि कुमार
६ द्वीप कुमार
७ उदधि कुमार
८ दिशा कुमार

९ पवन कुमार
१० स्तनित कुमार

पाच स्थावर के पाच दण्डक

१ पृथ्वी काय
२ अप् काय
३ तेजस् काय
४ वायु काय
५ वनस्पति काय

तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक

१ द्वीन्द्रिय
२ त्रीन्द्रिय
३ चतुरिन्द्रिय

अन्तिम पाच दण्डक

१ तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का एक दण्डक
१ मनुष्य का एक दण्डक
१ व्यन्तर देव का एक दण्डक
१ ज्योतिष देव का एक दण्डक
१ वैमानिक देव का एक दण्डक

★

१७
बोल सतरहवाँ : लेश्या छह

१ कृष्ण लेश्या
२ नील लेश्या
३ कापोत लेश्या
४ तेजो-लेश्या
५ पद्म लेश्या
६ शुक्ल लेश्या



१८
बोल अठारहवाँ : दृष्टि तीन

१ सम्यग्दृष्टि
२ मिथ्यादृष्टि
३ मिश्र दृष्टि



१६

बोल उन्नीसवाँ : ध्यान चार

१ आर्त ध्यान
२ रौद्र ध्यान
३ धर्म ध्यान
४ शुक्ल ध्यान

*

२०

बोल बीसवाँ - षड् द्रव्य के तीस भेद

धर्मास्तिकाय के पाँच बोल

१ द्रव्य से एक
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श रहित, अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी।
५ गुण से चलन गुण, जल में मछली का दृष्टान्त

अधर्मास्ति काय के पाँच बोल

१ द्रव्य से एक
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण

३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी,
५ गुण मे स्थिर गुण,
श्रान्त पथिक को छाया का दृष्टान्त

आकाशास्ति काय के पाच बोल

१ द्रव्य मे एक
२ क्षेत्र मे लोकालोक प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव मे वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, अजीव, शाश्वत,लोका-लोक-व्यापी,
५ गुण मे अवगाहन-दान गुण,
दूध मे बताशे का दृष्टान्त

काल द्रव्य के पाच बोल

१ द्रव्य से एक
२ क्षेत्र मे अढाई द्वीप प्रमाण
३ काल मे आदि-अन्त-रहित
४ भाव मे वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, अजीव,शाश्वत, अढाई द्वीप-वर्ती

५ गुण से वर्तना गुण,
नये को पुराना करे,
नये पुराने कपडे का दृष्टान्त

जीवास्तिकाय के पाच बोल

१ द्रव्य से अनन्त
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, जीव, शाश्वत, लोकवर्ती
५ गुण से उपयोग गुण,
चन्द्र की कला का दृष्टान्त

पुद्गलास्तिकाय के पाच बोल

१ द्रव्य से अनन्त
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-सहित
रूपी, अजीव, शाश्वत, लोकवर्ती
५ गुण से पूरण-गलन-गुण,
मिलते-बिखरते बादल का दृष्टान्त

५

२१

बोल इक्कीसवाँ . राशि दो

१ जीव राशि
२ अजीव राशि



२२

बोल बाईसवाँ श्रावक के बारह व्रत

पाच अणुव्रत

१ अहिंसा अणु व्रत
२ सत्य अणु व्रत
३ अस्तेय अणु व्रत
४ ब्रह्मचर्य अणु व्रत
५ अपरिग्रह अणु व्रत

तीन गुण व्रत

१ दिशा व्रत
२ भोगोपभोग-परिमाण व्रत
३ अनर्थ-दण्ड-विरमण व्रत

चार शिक्षा व्रत

१ सामायिक व्रत
२ देशावकाशिक व्रत
३ पौषध व्रत
४ अतिथि संविभाग व्रत

★

२३

बोल तेईसवाँ : साधु के पाँच महाव्रत

१ अहिंसा महाव्रत
२ सत्य महाव्रत
३ अस्तेय महाव्रत
४ ब्रह्मचर्य महाव्रत
५ अपरिग्रह महाव्रत

★

२४

बोल चौबीसवाँ : प्रत्याख्यान के ४९ भंग

अंक ११ भंग नव—एक करण, एक योग से कथन
१ करूँ नहीं, मन से
२ करूँ नहीं, वचन से
३ करूँ नहीं, काय से

अक २१ भग नव—दो करण एक योग से कथन

१ करूँ नही, कराऊँ नही, मन से
२ करूँ नही, कराऊँ नही, वचन से
३ करूँ नही, कराऊँ नही, काय से
४ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से
५ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, वचन से
६ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, काय से
७ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से
८ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, वचन से
९ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, काय से

अक २२ भग नव—दो करण दो योग से कथन

१ करूँ नही, कराऊँ नही, मन से, वचन से
२ करूँ नही, कराऊँ नही, मन से, काय से
३ करूँ नही, कराऊँ नही, वचन से, काय से
४ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से, वचन से
५ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से, काय से
६ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, वचन से, काय से
७ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से, वचन से
८ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से, काय से
९ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से, वचन से

जक २३ भग तीन—दो करण तीन योग से कथन

१ करूँ नही, कराउँ नही,
मन से, वचन से, काय से

२ करूँ नही, अनुमोदूँ नही,
मन से, वचन से, काय से

३ कराउँ नही, अनुमोदूँ नही,
मन से, वचन से, काय से

अक ३१ भग तीन—तीन करण एक योग से कथन

१ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से
२ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, वचन से
३ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, काय से

अक ३२ भग तीन—तीन करण दो योग से कथन

१ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही,
मन से, वचन से

२ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही,
मन से, काय से

३ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही,
वचन से, काय से

अक ३३ भंग एक–तीन करण, तीन योग से कथन
१ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं
मन से, वचन से, काय से

*

२५

बोल पचीसवाँ . चारित्र पाच

१ सामायिक चारित्र

२ छेदोपस्थापन चारित्र

३ परिहार विशुद्धि चारित्र

४ सूक्ष्म सपराय चारित्र

५ यथाख्यात चारित्र

*

पच्चीस बोल

[व्याख्या]

१

बोल पहला • गति चार

१ नरक गति	३ मनुष्य गति
२ तिर्यञ्च गति	४ देव गति

व्याख्या

संसार मे अनन्त जीव है। साधारण व्यक्ति के लिए सबको जानना और वर्णन कर सकना सम्भव नही है। केवली-भगवान् ही अपने अनन्त ज्ञान से अनन्त जीवो को जान-देख सकते हैं। अल्पज्ञ जीव में वैसा सामर्थ्य नही है, कि वह समस्त जीवो को जान सके, देख सके। क्योकि अल्पज्ञ जीव के पास ज्ञान का साधन है—इन्द्रिय। इन्द्रियो द्वारा सूक्ष्म और अतीन्द्रिय पदार्थों को जाना नही जा सकता।

फिर, एक अल्पज्ञ आत्मा जीवो का परिज्ञान कैसे करे? शास्त्रकार ने इसी प्रश्न के समाधान के लिए अनन्त जीवो का चार विभागो मे वर्गीकरण कर दिया है। संसार के समग्र जीव इस में समाहित हो जाते हैं। ससारस्थ एक भी जीव ऐसा नही रहता जो इस बोल में न आ जाता हो।

लोक भाषा में गति का अर्थ है—गमन, चलना फिरना। एक स्थान से दूसरे स्थान में जाना। परन्तु यहाँ पर गति का



एक विशेष पारिभाषिक अर्थ ग्रहण किया गया है। एक भव से दूसरे भव की प्राप्ति को गति कहा गया है। जब एक आत्मा मनुष्य-भव के आयुष्य को पूर्ण करके देव भव में जाने का प्रस्थान करता है तो उस क्षण से लेकर जब तक वह देव भव में रहता है, तब तक की वह अवस्था-विशेष देव गति कहलाती है। इसी प्रकार मनुष्य गति, तिर्यंच गति और नरक गति के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

'नाम कर्म' की उत्तर प्रकृतियों में, 'गति नाम' एक प्रकृति है। उस गति नाम कर्म के उदय से जीव कभी नरक में, कभी तिर्यञ्च में, कभी मनुष्य में और कभी देव योनि में जन्म ग्रहण करता है। अतः ये सब संसारी जीव की अशुद्ध पर्याय हैं, जो गति नाम कर्म के उदय से होती रहती हैं। शुद्ध दृष्टि से जीव, केवल शुद्ध जीव है, नारक आदि नहीं।

जैन दर्शन में, आत्मा के दो रूप माने गए हैं—मुक्त और संसारस्थ। मुक्त आत्मा वह है, जो कर्मों से रहित हो चुका है। वह शुद्ध है, निरञ्जन है, मल-रहित है। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्मा को सिद्ध कहते हैं। जो एक बार संसार से मुक्त हो गया, वह फिर कभी संसार में नहीं आता। मुक्त एवं सिद्ध आत्माएँ अनन्त हैं और अनन्त होंगी।

परन्तु जो आत्माएँ अभी तक कर्म-बन्धनों में बद्ध हैं, वे अशुद्ध हैं, कर्म-सहित हैं, मल सहित हैं। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्माओं को संसारस्थ कहते हैं। प्रस्तुत बोल में इन्हीं संसारी आत्माओं का वर्णन किया गया है। संसारी आत्माएँ चार ही प्रकार की हो सकती हैं—नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव।



नारक

नरक भूमि में वासी जीव नारक कहे जाते हैं। नरक भूमि सात हैं, जो इस प्रकार हैं—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और महातम प्रभा।

नरक एक ऐसा स्थान है, जहाँ जीव अपने अशुभ कर्मों का फल पाता है। नारक जीवों में अशुद्ध लेश्या और अशुद्ध परिणाम होते हैं। नरक की वेदना तीन प्रकार की होती है—क्षेत्र स्वभाव जन्य शीतादि, परस्परजन्य और असुरजन्य।

असंज्ञी जीव मरकर पहली भूमि तक, भुजपरिसर्प दूसरी तक, पक्षी तीसरी तक, सिंह चौथी तक, सर्प पाँचवीं तक, नारी छठी तक और मनुष्य एवं मत्स्य सातवीं तक जा सकते हैं।

नारक जीव मरकर नारक और देव नहीं बन सकते। तिर्यञ्च और मनुष्य ही बन सकते हैं।

तिर्यञ्च

नारक, मनुष्य और देव को छोड़ कर शेष जितने भी संसारी जीव हैं, वे तिर्यञ्च कहे जाते हैं। नरक-गति की तरह तिर्यञ्च गति भी पापमूलक मानी जाती है। तिर्यञ्च जीवों के तीन भेद हैं—जलचर, स्थलचर, और खेचर।

एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव भी तिर्यञ्च योनि में समाविष्ट हो जाते हैं। मनुष्य, देव तथा नारक को छोड़कर शेष समस्त पंचेन्द्रिय त्रस जीव भी तिर्यञ्च गति में हैं। लोक

भाषा मे, पशु, पक्षी और कीट-पतगे आदि जीव तिर्यञ्च हैं। तिर्यञ्च अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार प्राय चारो गतियों मे जा सकते हैं।

मनुष्य

शास्त्र मे मनुष्य-जन्म को सब श्रेष्ठ और सब-ज्येष्ठ कहा गया है। इस का मुख्य कारण यह है, कि मनुष्य अपनी संयम साधना से मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है, जबकि अन्य गतियो मे यह सम्भव नही है। गुण-स्थान की दृष्टि से भी नारक और देव चतुर्थ गुण-स्थान से आगे नही बढ सकते। तिर्यञ्च का विकास पाचवें से आगे नही। परन्तु मनुष्य मे समस्त गुण-स्थान सम्भवित हैं। अत मनुष्य जन्म सर्वश्रेष्ठ एव सबज्येष्ठ है।

जन्म के आधार पर मनुष्यो के दो भेद हैं—गर्भज और सम्मूच्छिम। माता और पिता के संयोग से जो जन्म मिलता है, वह गर्भज कहा जाता है। मनुष्य और तिर्यञ्च मे ही यह होता है। माता और पिता के सयोग के बिना जो मल-मूत्रादि मे मानवाकार प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं, वे संमूच्छिम कहे जाते हैं। मनुष्य की तरह तिर्यञ्च भी सम्मूच्छिम होते हैं और ये दोनो मनोरहित होने से असज्ञी ही होते हैं।

भूमि के आधार पर मनुष्यो के दो भेद किये गए हैं—भोग-भूमिज तथा कर्मभूमिज। भोग भूमि वह है, जहाँ असि कर्म, मसि-कर्म और कृषि-कर्म नही होते। और जहाँ ये होते हैं, वह कर्म भूमि है।

संस्कृति और सभ्यता के आधार पर भी मनुष्यों के भेद किये गये हैं। जैसे कि आर्य और म्लेच्छ। मनुष्य भी मर कर प्राय चारों गतियों में जा सकता है।

देव

देव शब्द भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में चिरपरिचित है। देवगति में सुख माना गया है। वहाँ शुभ लेश्या और शुभ परिणाम माने गए हैं। वहाँ प्राय सातावेदनीय कर्म का उदय माना गया है।

देवों के चार भेद हैं—भवन पति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। देव मरकर न देव हो सकता है और न नारक। किन्तु अपने शुभाशुभ कर्मों के कारण मनुष्य या तिर्यञ्च गति में जन्म ले सकता है।

गतियों के कारण

संक्षेप में नरक गति के कारण है—महारम्भ, महापरिग्रह। तिर्यञ्च गति का कारण है—माया। मनुष्य गति का कारण है—अल्पारम्भ, अल्पपरिग्रह। देव गति का कारण है—सराग संयम, संयमासंयम—बालतप और अकाम निर्जरा आदि।

★

२
बोल दूसरा : जाति पाँच

१ एकेन्द्रिय जाति
२ द्वीन्द्रिय जाति
३ त्रीन्द्रिय जाति
४ चतुरिन्द्रिय जाति
५ पञ्चेन्द्रिय जाति

व्याख्या

जीव अनन्त हैं। वे सभी समान नहीं हैं। विकास क्रम के आधार पर समग्र संसारी जीवों को पाँच विभागों में विभक्त किया गया है। समस्त जीवों में चैतन्य गुण समान होने पर भी उस गुण की अभिव्यक्ति में साधनभूत इन्द्रियों के विकास क्रम को लेकर ही संसारी जीवों के यहाँ पर पाँच भेद किये गये हैं।

जाति शब्द के दो अर्थ हैं—जन्म और समूह। यहाँ पर समूह अर्थ ही ठीक बैठता है। एकेन्द्रिय जाति का अर्थ है—ऐसे प्राणियों का समूह जिन के केवल एक ही इन्द्रिय है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय जाति तक का अर्थ समझ लेना चाहिए।

इन्द्रिय शब्द का अर्थ है—ज्ञान का साधन। जिस के द्वारा आत्मा को पदार्थों का ज्ञान होता है।

इन्द्रियाँ कितनी हैं? पाँच। कुछ लोगों की मान्यता है, कि मन भी इन्द्रिय है। फिर पाँच ही क्यों? मन इन्द्रिय अवश्य है पर वह अन्तरंग है। यहाँ पर जीवों के जो पाँच भेद किये गए हैं, वे बहिरंग इन्द्रियों के आधार पर ही किए हैं।



नाम कर्म की उत्तर प्रकृतियों में, जाति नाम कर्म भी एक प्रकृति है। उसके उदय से ही जीवों को एकेन्द्रिय आदि में जन्म ग्रहण करना पड़ता है।

एकेन्द्रिय जीव—पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति।
द्वीन्द्रिय जीव—लट, सीप, शंख कृमि, घुण आदि।
त्रीन्द्रिय जीव—चींटी, खटमल, जू, लीख, मकोड़ा आदि।
चतुरिन्द्रिय जीव—मक्खी, मच्छर, भंवरा, बिच्छू आदि।
पंचेन्द्रिय जीव—नारक, पशु आदि, मनुष्य, देव।



३

बोल तीसरा : काय छह

१ पृथ्वी काय	४ वायु काय
२ अप् काय	५ वनस्पति काय
३ तेजस काय	६ त्रस काय

व्याख्या

विभिन्न प्रकार के पुद्गलों से बने शरीरों के द्वारा जीव के जो विभाग होते हैं, उन्हें काय कहते हैं।

पृथ्वी है काय जिन की, वे जीव पृथ्वी काय हैं। अप (जल) है काय जिनकी, वे जीव अप काय। तेजस (अग्नि) है काय जिन

की वे जीव, तेजस् काय। वायु है काय जिनकी, वे जीव, वायु काय। वनस्पति है काय जिनकी, वे जीव, वनस्पति काय। त्रस (गमन-चलन क्रिया युक्त) है काय जिनकी वे जीव, त्रस काय।

जीव विज्ञान पर जितना अनुसन्धान जैन शास्त्रों में मिलता है, उतना अन्यत्र नहीं। अहिंसा-मूलक धर्म के लिए यह आवश्यक भी था, और आज भी है। हिंसा से बचने के लिए जीवों का स्वरूप और जीवो के भेदो को जानना अत्यन्त आवश्यक है।

शास्त्र में, जीवो के मुख्य रूप से दो भेद हैं—स्थावर और त्रस। प्रथम के पाँच काय स्थावर हैं। स्थावर का स्थूल अर्थ है, स्थिर रहने वाले, एक ही स्थान पर स्थित। जैसे वृक्ष आदि। जो जीव हलन-चलन की क्रिया करते हैं, वे त्रस हैं। द्वीन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक के जीव त्रस हैं। सिद्धान्तानुसार स्थावर नाम कर्म का उदय जिन को हो, वे जीव स्थावर हैं, और जिन को त्रस नाम कर्म का उदय हो, वे जीव त्रस हैं। स्थावर एवं त्रस को मिलाकर जीवो के छह भेद हो जाते हैं। आगम में इसी को षड् जीव निकाय कहा है।

पृथ्वी काय—मिट्टी, मुरड, हिंगुल, हरताल, हीरा, पन्ना, सोना, चादी आदि सब पृथ्वीकायिक जीव हैं। मिट्टी के एक कण में भी असंख्य पृथक्-पृथक जीव होते हैं। पृथ्वी कायिक जीवों को स्व पर शस्त्र न लगे, तब तक पृथ्वी सचित्त है। वही शस्त्र लगने पर अचित्त हो जाती है। यही क्रम जल, तेजस्, वायु और वनस्पति काय के सम्बन्ध मे भी है।

अप् काय—पानी [illegible] कुआ-बावड़ी का पानी [illegible] अप्कायिक जीव हैं।

तेजस्काय—[illegible] उल्का-पात आदि सब [illegible] हैं।

वायु काय—[illegible] गुञ्जा वायु आदि सब [illegible] हैं।

वनस्पति काय—[illegible] है। इसके दो भेद हैं—[illegible]

साधारण वनस्पति—[illegible] है [illegible] जीव वास करते हों, उसे साधारण [illegible] है। [illegible] आलू मूली अदरक आदि [illegible] वनस्पति है।

प्रत्येक वनस्पति—[illegible] है [illegible] जीव हो। लता, बेल, तृण, वृक्ष आदि [illegible] हैं। क्योंकि इनमें प्रत्येक जीव अपने शरीर [illegible] हैं।

त्रस काय—द्वीन्द्रिय [illegible] सभी जीव [illegible] काय हैं।



४

बोल चौथा : इन्द्रिय पाँच

१ श्रोत्रेन्द्रिय ३ घ्राणेन्द्रिय
२ चक्षुरिन्द्रिय ४ रसनेन्द्रिय
५ स्पर्शनेन्द्रिय

व्याख्या

समस्त ससारी जीवो मे समान इन्द्रियाँ नही होती हैं। किसी मे एक, किसी मे दो, किसी में तीन, किसी में चार और किसी मे पाँच। किसी जीव में पाँच से अधिक इन्द्रिय नही हो सकती। क्योंकि इन्द्रियाँ पाच ही हैं। यहा पर इन्द्रियो के आधार पर ससारी जीवो का वर्गीकरण किया गया है।

आत्मा को इन्द्र कहते हैं क्योंकि वह ज्ञानादि ऐश्वर्य से सम्पन्न है। इन्द्र जिस चिन्ह से जाना जाता है, अथवा जो इन्द्र के ज्ञान का साधन है, उसे इन्द्रिय कहा गया है, और वे सख्या में पाच हैं—स्पर्शन रसन, घ्राण, चक्षुष, और श्रोत्र।

श्रोत्र—जिस इन्द्रिय से शब्द का ज्ञान किया जाता है, सुना जाता है, वह श्रोत्र इन्द्रिय है, अर्थात् कर्ण—Sense of hearing (Ears)

चक्षुष—जिस इन्द्रिय से रूप का ज्ञान किया जाता है, देखा जाता है, वह चक्षुष इन्द्रिय है, अर्थात् नेत्र—Sense of sight (Eyes)



४

बोल चौथा : इन्द्रिय पाँच

१ श्रोत्रेन्द्रिय   ३ घ्राणेन्द्रिय
२ चक्षुरिन्द्रिय   ४ रसनेन्द्रिय
५ स्पर्शनेन्द्रिय

व्याख्या

समस्त संसारी जीवों में समान इन्द्रियाँ नही होती हैं। किसी में एक, किसी में दो, किसी में तीन, किसी में चार और किसी में पाँच। किसी जीव में पाँच से अधिक इन्द्रिय नही हो सकती। क्योंकि इन्द्रियाँ पाँच ही है। यहा पर इन्द्रियों के आधार पर संसारी जीवों का वर्गीकरण किया गया है।

आत्मा को इन्द्र कहते हैं, क्या कि वह ज्ञानादि ऐश्वर्य से सम्पन्न है। इन्द्र जिस चिन्ह से जाना जाता है, अथवा जो इन्द्र के ज्ञान का साधन है, उसे इन्द्रिय कहा गया है, और वे संख्या मे पाच हैं—स्पर्शन रसन, घ्राण, चक्षुष्, और श्रोत्र।

श्रोत्र—जिस इन्द्रिय से शब्द का ज्ञान किया जाता है, सुना जाता है, वह श्रोत्र इन्द्रिय है, अर्थात् श्रवण—Sense of hearing (Ears)

चक्षुष्—जिस इन्द्रिय से रूप का ज्ञान किया जाता है, देखा जाता है, वह चक्षुष् इन्द्रिय है, अर्थात् नेत्र—Sense of sight (Eyes)

घ्राण—जिस इन्द्रिय से गन्ध का ज्ञान लिया जाता है, सूँघा जाता है, वह घ्राण इन्द्रिय है, अर्थात् नाक—Sense of smell (Nose)

रसन—जिस इन्द्रिय से रस का ज्ञान लिया जाता है, स्वाद लिया जाता है, वह रसन इन्द्रिय है, अर्थात् जिह्वा—Sense of test (Tongue)

स्पर्शन—जिस इन्द्रिय से स्पर्श का ज्ञान लिया जाता है, वह स्पर्शन इन्द्रिय है, अर्थात् त्वचा—Sense of Touch

इन्द्रियों की तरह मन भी ज्ञान का साधन है फिर इसे इन्द्रिय क्यों नहीं माना गया? मन ज्ञान का साधन है परन्तु फिर भी रूप आदि विषयों में प्रवृत्त होने के लिए इसे, चक्षु आदि इन्द्रियों का सहारा लेना पड़ता है ... स्वतन्त्र रूप से भी अपने विषय विचार का ... फिर भी अधिकतर मन का कार्य इन्द्रियों द्वारा ... चिन्तन करना मात्र है। मन उसे इन्द्रिय न मान ... (इन्द्रिय जैसा) कहा गया है।

यद्यपि मन पशु और पक्षी आदि में भी होता है ... सब से विकसित अवस्था मनुष्य में देखी जाती है। ... का नाड़ी तन्त्र Nervous system ... अधिक विकसित है। मनुष्य में Mental ... से श्रेष्ठ है।

मनोविज्ञान के अनुसार मन के तीन ... है—
चेतन मन conscious, चेतनायुक्त ... और
अचेतन Un-conscious

चेतन मन, मन का वह भाग है, जिस मे मन की समस्त ज्ञान क्रियाएं चला करती हैं। चलना, फिरना, बोलना, लिखना, पढ़ना और सोचना आदि क्रियाओं का नियन्त्रण चेतन मन करता है।

चेतन मन के परे चेतनोन्मुख मन है। मे वे भावनाएँ, स्मृतियाँ, इच्छाएं तथा वेदनाएँ रहती हैं, जो प्रकाशित नहीं हैं, किन्तु वे चेतना पर आने के लिए तत्पर हैं।

चेतनोन्मुख मन के परे अचेतन मन है। विचार तथा भावनाएँ न हमे ज्ञात रहती है, और न सहज भाव से बाहर ही आती हैं। प्रयत्न विशेष से ही वे चेतना स्तर पर आती है।

शास्त्र मे मन के दो भेद हैं—द्रव्य और भाव। द्रव्य मन पुद्गलमय होने से जड है—और भाव मन चेतनमय, क्योंकि भाव मन ज्ञानावरण का एक क्षयोपशम विशेष है।

★



५
बोल पाँचवाँ : पर्याप्ति छह

१ आहार पर्याप्ति
२ शरीर पर्याप्ति
३ इन्द्रिय पर्याप्ति
४ श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति
५ भाषा पर्याप्ति
६ मन पर्याप्ति

व्याख्या

पर्याप्ति आत्मा की एक शक्ति विशेष है। आत्मा जिस शक्ति से पुद्गलो को ग्रहण करता है और उन्हे शरीर आदि रूप मे परिणत करता है, उसे पर्याप्ति कहते हैं। इस के छह भेद हैं।

आहार पर्याप्ति—जिस शक्ति से जीव आहार योग्य बाह्य पुद्गलो को ग्रहण कर उन को खल और रस रूप में बदलता है।

शरीर पर्याप्ति—जिस शक्ति के द्वारा जीव रस रूप में परिणत आहार को रक्त, मांस, मज्जा और वीर्य आदि धातुओं में बदलता है।

इन्द्रिय पर्याप्ति—जिस शक्ति से जीव सात धातुओं को स्पर्शन, रसन आदि इन्द्रियो म बदलता है।

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति—जिस शक्ति के द्वारा जीव श्वास और उच्छ्वास योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है, और छोड़ता है।

भाषा पर्याप्ति—जिस शक्ति के द्वारा जीव भाषा योग्य भाषा वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके भाषा रूप मे परिणत कर के छोड़ता है।

मन पर्याप्ति—जिस शक्ति के द्वारा जीव मनोयोग्य मनो वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके मन रूप में बदलता और छोड़ता है।

किन जीवों के कितनी पर्याप्ति होती है? एकेन्द्रिय जीव के भाषा और मन को छोड़ कर शेष सभी है। विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक) और असज्ञी पञ्चेन्द्रिय के मन को छोड़कर शेष समस्त पर्याप्ति है। सज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव के छहो पर्याप्ति होती हैं।

ससारी जीवों में ये पर्याप्ति कम से कम चार और अधिक से अधिक छह होती है। कोई भी जीव जब अपर्याप्त दशा में मरता है तब वह कम से कम प्रथम की तीन पर्याप्ति तो अवश्य ही पूरी करता है।

पर्याप्ति के आधार पर जीवों के दो भेद किये हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। जिस जीव ने स्व योग्य पर्याप्ति को पूर्ण कर लिया है, वह पर्याप्त कहा जाता है।

अपर्याप्त वह है जो स्व योग्य पर्याप्ति को पूर्ण नहीं कर पाया है।

★

६

प्राण के दस भेद

१ श्रोत्र बल प्राण	६ काय बल प्राण
२ चक्षुष् बल प्राण	७ वचन बल प्राण
३ घ्राण बल प्राण	८ मन बल प्राण
४ रसन बल प्राण	९ श्वासोच्छ्वास बल प्राण
५ स्पर्शन बल प्राण	१० आयुष्य बल प्राण

लक्षण

प्राण अर्थात् जीवन शक्ति है। जिस शक्ति के सयोग से जीव जीवित रहे, और वियोग से मर जाए, वह प्राण है। प्राण जीव के बाह्य लक्षण हैं। इनके बिना जीव जीवित नहीं रहता।

शास्त्र मे प्राण के दो भेद हैं—द्रव्य और भाव। जो प्राण केवल ससार अवस्था में ही मिलते हैं, मुक्त दशा में नहीं, वह द्रव्य प्राण कहा जाता है। द्रव्य प्राण के दस भेद हैं।

पांच इन्द्रिय, तीन योग और श्वासोच्छ्वास तथा आयुष्य ये सब मिलकर दस द्रव्य प्राण हैं।

जो प्राण मुक्त दशा में भी आत्मा के साथ रहते हैं वे भाव प्राण हैं। क्योंकि वे आत्मा के निज स्वरूप हैं। जैसे ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य।

८

बोल आठवाँ : योग पन्द्रह

चार मन के —

१ सत्य मनो योग
२ असत्य मनोयोग
३ मिश्र मनोयोग
४ व्यवहार मनोयोग

चार वचन के —

१ सत्य वचन योग
२ असत्य वचन योग
३ मिश्र वचन योग
४ व्यवहार वचन योग

सात काय के —

१ औदारिक काय योग
२ औदारिक-मिश्र काय योग
३ वैक्रिय काय योग

६

ज्ञान मीमांसा : [illegible]

पांच ज्ञान —

१ मति ज्ञान
२ श्रुत ज्ञान
३ अवधि ज्ञान
४ मनः पर्यव ज्ञान
५ केवल ज्ञान

तीन अज्ञान—

१ मति अज्ञान
२ श्रुत अज्ञान
३ अवधि अज्ञान (विभङ्गज्ञान)

चार दर्शन

१ चक्षु दर्शन
२ अचक्षु दर्शन
३ अवधि दर्शन
४ केवल दर्शन

उपयोग

आत्मा के ज्ञान रूप व्यापार को उपयोग कहते हैं। किसी भी वस्तु का सामान्य या विशेष रूप से जान लेना उपयोग है। उपयोग के दो भेद हैं—ज्ञान और दर्शन। पदार्थों के विशेष बोध को ज्ञान या साकारोपयोग कहते हैं। पदार्थों के विशेष धर्म विशेष गुण और विशेष क्रिया का ज्ञान होना—साकारोपयोग है। पदार्थों के सामान्य धर्म को दर्शन या निराकारोपयोग कहते हैं।

जैन दर्शन में वस्तु सामान्य विशेषात्मक मानी है। जब चेतना वस्तु के विशेष धर्म को मुख्य रूप से और उस के सामान्य धर्म को गौण रूप में ग्रहण करती है तो चेतना के उस व्यापार को ज्ञानोपयोग कहा जाता है। परन्तु जब चेतना किसी भी वस्तु के सामान्य धर्म को मुख्य रूप में और उसके विशेष धर्म को गौण रूप में ग्रहण करती है, तब उसे दर्शनोपयोग कहते हैं। ज्ञान साकार और दर्शन निराकार होता है।

मति ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला रूपी पदार्थों का ज्ञान। मन से अरूपी पदार्थों का भी परोक्ष ज्ञान किया जा सकता है।

श्रुत ज्ञान—जो ज्ञान श्रुतानुसारी है। जिस में शब्द और और अर्थ का सम्बन्ध जाना जाता है। जो मति ज्ञान के बाद होता है।

मति और श्रुत का परस्पर सम्बन्ध है। दोनों में कार्य कारण भाव है। मति ज्ञान कारण है और श्रुत ज्ञान कार्य है। दो[illegible] ज्ञान [illegible] हैं।

अवधि ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना आत्मा-द्वारा मर्यादा पूर्वक रूपी द्रव्य का ज्ञान।

मन पर्याय ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना आत्मा द्वारा संज्ञी जीवों के मनोगत भावों को जानने वाला ज्ञान।

केवल ज्ञान—मूर्त, अमूर्त, सूक्ष्म, स्थूल आदि त्रिकाल-वर्ती समस्त पदार्थ और उनकी सम्पूर्ण पर्यायों को एक साथ जानने वाला ज्ञान, अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थ और उनकी सम्पूर्ण पर्यायों को बिना किसी बाह्य साधन के साक्षात् आत्मा द्वारा एक साथ जान लेने वाला ज्ञान।

अवधि आदि तीन ज्ञान प्रत्यक्ष हैं, अवधि और मन पर्याय विकल पूर्ण प्रत्यक्ष है, और केवल ज्ञान सकल पूर्ण प्रत्यक्ष है।

मिथ्यात्व-सहचरित मति, श्रुत और अवधि क्रम से *मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, और अवधि अज्ञान* कहे जाते हैं। यहाँ पर अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नहीं, बल्कि कुत्सित ज्ञान समझना चाहिए। कुत्सित ज्ञान का अर्थ है मिथ्या ज्ञान, विपरीत ज्ञान।

चक्षु दर्शन—चक्षुर्दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर चक्षु द्वारा पदार्थों का जो सामान्य रूप से बोध होना है।

अचक्षु दर्शन—अचक्षुदर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर चक्षु को छोड़ कर शेष इन्द्रियों से और मन से पदार्थों का जो सामान्य रूप से बोध होता है।

अवधि दर्शन—अवधिदर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर, इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना रूपी पदार्थों का जो सामान्य बोध होता है।

केवल दर्शन—केवल दर्शनावरण कर्म के क्षय होने पर साक्षात् आत्मा द्वारा सकल पदार्थों का जो सामान्य बोध होता है, उसे केवल दर्शन कहते हैं।

★

१०

मोल दसवाँ कर्म आठ

१ ज्ञानावरण कर्म	५ आयुष् कर्म
२ दर्शनावरण कर्म	६ नाम कर्म
३ वेदनीय कर्म	७ गोत्र कर्म
४ मोहनीय कर्म	८ अन्तराय कर्म

व्याख्या

मिथ्यात्व, कषाय और योग आदि कारणों से जीव के द्वारा जो किया जाता है, वह कर्म है। जीव और कर्म का यह सम्बन्ध ठीक वैसा ही होता है, जैसा दूध और पानी का अथवा अग्नि और लोह पिण्ड का। आत्म-सम्बद्ध पुद्गल द्रव्य को कर्म कहते हैं।

यद्यपि जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि काल से है परन्तु प्रत्येक का यह सम्बन्ध अनन्त काल तक रहेगा, सो बात नहीं



है। खान में जो सुवर्ण है, उस का मिट्टी के साथ अनादि सम्बन्ध होने पर भी विशेष शोध क्रिया के द्वारा जब उस में मिट्टी हटा देते हैं, तब वह शुद्ध सुवर्ण हो जाता है। यही सिद्धान्त कर्म और आत्मा पर भी लागू पड़ता है। कर्म-सहित जीव अशुद्ध और कर्म रहित जीव शुद्ध होता है। साधना के द्वारा जीव शुद्ध, बुद्ध और मुक्त हो सकता है।

शास्त्र में मुख्य रूप से कर्म के दो भेद हैं—भाव कर्म और द्रव्य कर्म। राग, द्वेष और कषाय आदि भाव कर्म हैं। भावकर्म के निमित्त से कर्म वर्गणा के पुद्गलों की एक विशेष परिणति द्रव्य कर्म है। ऊपर जो कर्म के आठ भेद हैं, वे द्रव्य कर्म हैं।

ज्ञानावरण कर्म—आत्मा के ज्ञान गुण का आच्छादित करने वाला कर्म। जिस प्रकार आँख पर कपड़े की पट्टी लपेटने से वस्तुओं के देखने में रुकावट पड़ती है, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म के प्रभाव से आत्मा को पदार्थों का विशेष बोध करने में रुकावट पड़ती है।

जैसे सघन बादलों से सूर्य के ढक जाने पर भी उसका प्रकाश उतना अवश्य रहता है, कि जिस से दिन रात का भेद समझा जा सके। वैसे ही कैसा भी प्रगाढ़ ज्ञानावरण कर्म हो, उस के रहते हुए भी आत्मा में इतना ज्ञान तो अवश्य रहता है, कि जिस से वह जड़ पदार्थों से पृथक किया जा सके।

दर्शनावरण कर्म—आत्मा की सामान्य बोधरूप दर्शन शक्ति को, आत्मा के दर्शन गुण को ढकने वाला कर्म। यह कर्म द्वार पाल के समान है। जैसे द्वार पाल राजा के दर्शन करने में रुका-

है। खान में जो सुवर्ण है, उस का मिट्टी के साथ अनादि सम्बन्ध होने पर भी विशेष शोध क्रिया के द्वारा जब उस से मिट्टी हटा देते हैं, तब वह शुद्ध सुवर्ण हो जाता है। यही सिद्धान्त कर्म और आत्मा पर भी लागू पड़ता है। कर्म-सहित जीव अशुद्ध और कर्म रहित जीव शुद्ध होता है। साधना के द्वारा जीव शुद्ध, बुद्ध और मुक्त हो सकता है।

शास्त्र में मुख्य रूप से कर्म के दो भेद हैं—भाव कर्म और द्रव्य कर्म। राग, द्वेष और कषाय आदि भाव कर्म हैं। भावकर्म के निमित्त से कर्म वर्गणा के पुद्गलों की एक विशेष परिणति द्रव्य कर्म है। ऊपर जो कर्म के आठ भेद हैं, वे द्रव्य कर्म हैं।

ज्ञानावरण कर्म—आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करने वाला कर्म। जिस प्रकार आँख पर कपड़े की पट्टी लपेटने से वस्तुओं के देखने में रुकावट पड़ती है, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म के प्रभाव से आत्मा को पदार्थों का विशेष बोध करने में रुकावट पड़ती है।

जैसे सघन बादलों में सूर्य के ढक जाने पर भी उसका प्रकाश इतना अवश्य रहता है, कि जिस से दिन रात का भेद समझा जा सके। वैसे ही कैसा भी प्रगाढ़ ज्ञानावरण कर्म हो, उस के रहते हुए भी आत्मा में इतना ज्ञान तो अवश्य रहता है, कि जिस से वह जड़ पदार्थों से पृथक् किया जा सके।

दर्शनावरण कर्म—आत्मा की सामान्य बोधरूप दर्शन शक्ति को, आत्मा के दर्शन गुण को ढकने वाला कर्म। यह कर्म द्वार-पाल के समान है। जैसे द्वार पाल राजा के दर्शन करने में रुका-

वट डालता है, वैसे ही यह कर्म भी पदार्थों का सामान्य बोध करने में रुकावट डालता है।

वेदनीय कर्म—जो अनुकूल और प्रतिकूल विषयों से उत्पन्न सुख और दुःख रूप में वेदन अर्थात् अनुभव किया जाता है, यह कर्म मधु लिप्त तलवार की धार को चाटने के समान है। चाटते समय क्षण भर को सुख, परन्तु बाद में दुःख होता है। वेदनीय कर्म की भी यही स्थिति है। वेदनीय कर्म का दुःख तो दुःख रूप है ही, किन्तु सुख भी अन्ततः दुःख रूप ही है।

मोहनीय कर्म—जो कर्म आत्मा को मोहित करता है, भले बुरे के विवेक से शून्य बना देता है, जो [illegible] है, वह कर्म मोहनीय है। यह कर्म अन्य कर्मों से [illegible] है। यह मदिरा के सदृश होता है। जैसे मदिरा [illegible] विकल हो जाता है, वैसे ही मोहनीय के [illegible] विवेक शून्य हो जाता है। यह कर्म आत्मा के [illegible] गुण का घात करता है।

आयुष कर्म—जिस कर्म के रहते प्राणी [illegible] में जीता है, और पूरा होने पर मर जाता है [illegible] के समान है।

नाम कर्म—जिस कर्म के उदय से [illegible] नरक, कभी तिर्यञ्च, कभी मनुष्य और कभी देव [illegible] कभी जीव को एकेन्द्रिय आदि नानाविध [illegible] नाम कर्म है। यह कर्म चित्रकार के समान माना [illegible] नाना चित्र बनाता है, वैसे नाम [illegible] चित्रकार [illegible] नाना [illegible] बनाता है।

गोत्र कर्म—जिस कर्म के उदय से जीव जीवन की उच्च और नीच स्थिति को प्राप्त करता है, यह कर्म कुम्भकार के समान है। जैसे कुम्भकार अच्छे बुरे घडा को बनाता है, वैसे ही यह कर्म भी जीव को उच्च और नीच बनाता रहता है।

अन्तराय कर्म—जिस कर्म के उदय से आत्मा की दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य शक्ति का घात होता है, अथवा इनमें रुकावट पडती है। यह कर्म भण्डारी के समान है। राजा देता है, भण्डारी बाधा डालता है। वैसे ही इस कर्म से दान, लाभ आदि में बाधा पडती है।

★

११
बोल ग्यारहवाँ गुण स्थान चौदह

१ मिथ्या-दृष्टि गुण स्थान
२ सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुण स्थान
३ सम्यग् मिथ्यादृष्टि (मिश्र) गुण स्थान
४ अविरत सम्यग्दृष्टि गुण स्थान
५ देश विरत गुण स्थान
६ प्रमत्त संयत गुण स्थान
७ अप्रमत्त संयत गुण स्थान

८ निवृत्ति बादर सम्पराय गुण स्थान
९ अनिवृत्ति बादर सम्पराय गुण स्थान
१० सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान
११ उपशान्त मोह-गुण स्थान
१२ क्षीण-मोह गुण स्थान
१३ सयोगी केवली गुण स्थान
१४ अयोगी केवली गुण स्थान ।

व्याख्या

आत्मा की अशुद्धतम दशा से लेकर शुद्धतम दशा तक, संसार अवस्था से लेकर मुक्ति अवस्था तक और जीव की बद्ध स्थिति से लेकर मुक्त स्थिति तक—पहुँचने के लिए चौदह भूमिकाएँ stages मानी गई हैं, जिन्हें गुण स्थान अर्थात् विकास भूमिकाएँ कहते हैं। गुणस्थान का अर्थ है—आत्मा की स्थिति-विशेष। गुण (आत्मशक्ति) के स्थान (क्रमिक विकास) को गुणस्थान कहा जाता है।

मिथ्या दृष्टि गुण स्थान—मिथ्या (तत्त्व श्रद्धान के विपरीत) है, दृष्टि जिसकी वह मिथ्या दृष्टि, उसका गुणस्थान मिथ्या दृष्टि गुणस्थान। यह जीव की निम्नतम दशा है।

सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान—सम्यक्त्व के आस्वाद मात्र से सहित जो दृष्टि वह सास्वादन। सम्यग्दृष्टि, उसका गुणस्थान सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से सम्यक्त्व से पराङमुख मिथ्यात्व की ओर झुका हुआ जीव की स्थिति।

सम्यग् मिथ्या दृष्टि गुण स्थान—यह आत्मा की सदिग्ध, दोलायमान अवस्था है। इसमे विचार दृष्टि स्थिर नही हो पाती है। इसमे स्थित जीव तत्त्वो पर न एकान्त रुचि करता है, न एकान्त अरुचि।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान—अविरत, त्याग–रहित। त्याग रहित है सम्यग्दृष्टि जिसकी, वह अविरत सम्यग्दृष्टि, उसका गुणस्थान, अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान। यह त्याग-शून्य सम्यग् विचार की अवस्था है, इसमें दृष्टि तो सम्यग है, पर आचरण नही।

देश विरत गुण स्थान—जिसको विरति (त्याग) पूर्ण न हो वह देश विरति, उसका गुणस्थान, देश विरत गुणस्थान। इसम देश-रूप मे, अश रूप में, हिंसादि से विरति का भाव आ जाता है।

प्रमत्त संयत गुण स्थान—प्रमाद-युक्त साधु के गुणस्थान को प्रमत्त सयत गुणस्थान कहते हैं। इसमें सव रूप से, पूर्ण रूप से चारित्र आ जाता है। सव विरत बन जाता है।

अप्रमत्त संयत गुण स्थान—प्रमाद मुक्त साधु के गुणस्थान को अप्रमत्त सयत गुण स्थान कहते हैं। इसमें प्रमाद का अभाव होने से आत्मा और भी अधिक विशुद्ध होता है।

निवृत्ति बादर सम्पराय गुणस्थान—बादर का अर्थ स्थूल है, और सम्पराय का अर्थ कषाय है। दशम गुण स्थान सूक्ष्म सम्पराय की अपेक्षा उक्त गुणस्थान में स्थूल कषाय का अस्तित्व होने के कारण इसे बादर सम्पराय कहते है। निवृत्ति का अर्थ भिन्नता है।

ग्रन प्रस्तुत गुण स्थान के सम समय-वर्ती समस्त जीवों के अध्यवसाय भिन्न अर्थात् न्यूनाधिक शुद्धि वाले होते हैं।

अनिवृत्ति बादर सम्पराय गुण स्थान—प्रस्तुत गुण स्थान में भी बादर सम्पराय अर्थात् स्थूल कषाय का अस्तित्व रहता है। अतः यह भी बादर-सम्पराय कहलाता है। पूर्ववर्ती अनिवृत्ति शब्द का अर्थ अभिन्नता है। अतः नवम गुणस्थान में जो जीव समसमय-वर्ती होते हैं उन सबके अध्यवसाय एक समान अर्थात् तुल्य शुद्धि वाले होते हैं।

सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान—सूक्ष्म अर्थ है सम्पराय कषाय (मात्र लोभ) है जिसमें वह सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान। इसमें चार कषायों में से केवल सूक्ष्म लोभ रह जाता है।

उपशान्त मोह गुण स्थान—उपशान्त अर्थात् अन्तर्मुहूर्त के लिए दबा दिया गया है, मोह कर्म जिसमें, वह उपशान्त मोह, उसका गुणस्थान, उपशान्तमोह गुणस्थान। इसमें मोह (लोभ) का उपशम होता है, क्षय नहीं।

क्षीण मोह गुण स्थान—क्षीण अर्थात् समूल नष्ट हो गया है, मोह कर्म जिसका, वह क्षीण मोह, उसका गुण स्थान क्षीण मोह गुण स्थान। इसमें मोह सर्वथा नष्ट हो जाता है।

सयोगी केवली गुण स्थान—योग का अर्थ मन, वचन और काय का व्यापार है। सयोगी अर्थात् योग युक्त है जो वह सयोगी केवली, उसका गुण स्थान, सयोगी केवली इसमें आत्मा, ... और सर्व दर्शी हो जाता है।

अयोगी केवली गुण स्थान—अयोगी, योग रहित। योग रहित है, केवली जिसमें, वह अयोगी केवली, उसका गुणस्थान, अयोगी केवली गुणस्थान। इसमें आत्मा शैलेश अर्थात् मेरु पर्वत के समान निष्कम्प हो जाता है। इसके बाद आत्मा गुणस्थानातीत होकर सर्वथा शुद्ध, मुक्त, परमात्मा बन जाता है।

★

१२
बोल बारहवाँ : पाँच इन्द्रियों के तेईस विषय

श्रोत्र इन्द्रिय के तीन विषय—

१ जीव शब्द
२ अजीव शब्द
३ मिश्र शब्द

चक्षुष्-इन्द्रिय के पाँच विषय—

१ कृष्ण वर्ण
२ नीलवर्ण
३ रक्त वर्ण
४ पीतवर्ण
५ श्वेतवर्ण

व्याख्या

इन्द्रिय पाँच हैं, अत मुख्यतया उनके विषय भी पाँच हैं—शब्द, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श। विस्तार की अपेक्षा से इनके तेईस विषय हो जाते हैं। पाँच इन्द्रिय के विषय तेईस और विकार दो सौ चालीस होते हैं।

संसार के समस्त पदार्थ दो विभागों में विभक्त हैं—मूर्त और अमूर्त। जिसमें वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श हो, वह मूर्त, शेष सभी अमूर्त। मूर्त अर्थात् पौद्गलिक पदार्थ ही इन्द्रिय-ग्राह्य हो सकते हैं, अमूर्त नहीं,—जैसे आत्मा आदि।

प्रत्येक इन्द्रिय अपने विषय को ही ग्रहण करती है। दूसरे के विषय को नहीं। रूप को चक्षु ही ग्रहण करती है। घ्राण एवं रसन आदि नहीं। सबका यही क्रम है।

विकार

पाँच इन्द्रियों के दो सौ चालीस विकार होते हैं और वे इस प्रकार समझने चाहिए—

श्रोत्र इन्द्रिय के तीन विषयों के १२ विकार—जीव शब्द, अजीव शब्द और मिश्र शब्द। तीन शुभ और तीन अशुभ। इन छह पर राग और छह पर द्वेष। ये १२ विकार हुए।

चक्षु इन्द्रिय के पाँच विषयों के ६० विकार—५ सचित्त, ५ अचित्त और ५ मिश्र। ये १५ शुभ और १५ अशुभ। इन ३० पर राग और ३० पर द्वेष। ये ६० विकार हुए।

घ्राण इन्द्रिय के दो विषयों के १२ विकार—२ सचित्त, २ अचित्त और २ मिश्र। इन छह पर राग और छह पर द्वेष। ये १२ विकार हुए।

रसन इन्द्रिय के पांच विषयों के ६० विकार—५ सचित्त, ५ अचित्त और ५ मिश्र। १५ शुभ और १५ अशुभ। ३० पर राग और ३० पर द्वेष। ये ६० विकार हुए।

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषयों के ९६ विकार—८ सचित्त, ८ अचित्त और ८ मिश्र। २४ शुभ और २४ अशुभ, इन ४८ पर राग और ४८ पर द्वेष। ये ९६ विकार हुए।

★

१३
बोल तेरहवाँ : दस प्रकार का मिथ्यात्व

१ जीव को अजीव समझना मिथ्यात्व
२ अजीव को जीव समझना मिथ्यात्व
३ धर्म को अधर्म समझना मिथ्यात्व
४ अधर्म को धर्म समझना मिथ्यात्व
५ साधु को असाधु समझना मिथ्यात्व
६ असाधु को साधु समझना मिथ्यात्व
७ संसार-मार्ग को मोक्ष मार्ग समझना मिथ्यात्व
८ मोक्ष मार्ग को संसार-मार्ग समझना मिथ्यात्व

९ मुक्त को अमुक्त समझना मिथ्यात्व
१० अमुक्त को मुक्त समझना मिथ्यात्व

व्याख्या

जीव के विपरीत श्रद्धानरूप परिणाम को मिथ्यात्व कहा गया है। मिथ्यात्व संसार का बीज है, कारण है। जब तक आत्मा में मिथ्यात्व का शल्य है, तब तक वह शुद्ध, निर्मल और मलमुक्त नहीं बन सकता।

अतत्त्व में तत्त्व बुद्धि रखना, अधर्म में धर्म बुद्धि रखना, अदेव में देवबुद्धि रखना और अगुरु में गुरु बुद्धि रखना, मिथ्यात्व है।

तत्त्व—यहाँ पर तत्त्व का अर्थ जीव, अजीव आदि तत्त्व समझना चाहिए।

देव—कर्म रूप शत्रु के विजेता, अष्टादश दोष-शून्य, सर्वज्ञ सर्वदर्शी, वीतराग अरिहन्त भगवान् देव हैं।

गुरु—कनक और कान्ता के त्यागी पञ्च महाव्रत के पालन वाले, पञ्च समिति और तीन गुप्ति के धारक सन्त गुरु हैं।

धर्म—सर्वज्ञ भाषित, दयामय, विनय मूलक, कर्म का नाश करने वाला और मोक्ष की ओर ले जाने वाला तत्त्व धर्म है।

यह वर्णन व्यवहार दृष्टि से किया गया है। निश्चय दृष्टि से तो आत्मा स्वयं ही देव है, स्वयं ही गुरु है, और स्वयं ही धर्म है।

प्रस्तुत बोल में इस प्रकार के मिथ्यात्व का वर्णन किया गया

है। जीव को जीव और अजीव को अजीव समझना सम्यक्त्व है। परन्तु जीव को अजीव समझना मिथ्यात्व है। इसी प्रकार अजीव को जीव समझना भी मिथ्यात्व है। यथार्थ-दृष्टि सम्यक्त्व है, और विपरीत-दृष्टि मिथ्यात्व है। सम्यक्त्व मोक्ष-हेतु है, और मिथ्यात्व संसार-हेतु।

इसी प्रकार धर्म और अधर्म, साधु और असाधु, संसार और मोक्ष तथा मुक्त और अमुक्त के विषय में भी समझ लें। यदि इनमें यथार्थ दृष्टि है, तो वह सम्यक्त्व है और यदि इनमें विपरीत दृष्टि है तो वह मिथ्यात्व है।



१४
बोल चौदहवाँ : नव तत्त्व के ११५ भेद
नव तत्त्व

१	जीव तत्त्व	५	आस्रव तत्त्व
२	अजीव तत्त्व	६	संवर तत्त्व
३	पुण्य तत्त्व	७	निर्जरा तत्त्व
४	पाप तत्त्व	८	बन्ध तत्त्व

९ मोक्ष तत्त्व

व्याख्या

यथार्थ सद् वस्तु को तत्त्व कहते हैं। ये नव मूल तत्त्व हैं। जीव चेतनामय है। अजीव अचेतनामय है। पुण्य सुख देने वाला है। पाप दुःख देने वाला है। आस्रव, शुभ और अशुभ कर्मों के

आने का द्वार है। संवर, आस्रव का निरोध है। एक देश से कर्मों का आत्मा से अलग होना निर्जरा है। बन्ध, आत्मा और कर्म पुद्गल का परस्पर सम्बन्ध है। मोक्ष, सम्पूर्ण कर्मों का क्षय है।

जीव तत्त्व के चौदह भेद

१ सूक्ष्म एकेन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
२ बादर एकेन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
३ द्वीन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
४ त्रीन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
५ चतुरिन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
६ असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
७ संज्ञी पञ्चेन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त

व्याख्या

एकेन्द्रिय जीवों के दो भेद हैं—सूक्ष्म और बादर। व्यवहार दृष्टि से सूक्ष्म का अर्थ है—आँखों से न दीखने वाले जीव और बादर का अर्थ है—स्थूल जीव। परन्तु शास्त्र की दृष्टि से जिन्हें सूक्ष्म नाम कर्म का उदय हो, वे सूक्ष्म और जिन्हें बादर नाम कर्म का उदय हो वे बादर। बादर जीव के शरीर भी अलग अलग नहीं देखे जाते। किन्तु वे समुदाय रूप में ही देखे जाते हैं। सूक्ष्म जीव सम्पूर्ण लोक व्यापी हैं। बादर लोक के एक देश में हैं।

अजीव तत्त्व के चौदह भेद

धर्मास्तिकाय के तीन भेद—

१ स्कन्ध
२ देश
३ प्रदेश

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद—

१ स्कन्ध
२ देश
३ प्रदेश

आकाशास्तिकाय के तीन भेद—

१ स्कन्ध
२ देश
३ प्रदेश
१ दशवां काल

पुद्गलास्तिकाय के चार भेद—

१ स्कन्ध
२ देश

३ प्रदेश

४ परमाणु

व्याख्या

स्कन्ध—स्कन्ध के दो अर्थ हैं—एक तो अखण्ड वस्तु को स्कन्ध कहते हैं, दूसरा अलग अलग अवयव एकत्रित होकर जो एक अवयवी अर्थात् एक समूह बन जाता है, उस समुदित अवस्था का नाम भी स्कन्ध है।

देश—स्कन्ध का एक कल्पित भाग

प्रदेश—निरंश अंश, अर्थात् जिस अंश का दूसरा अंश नहीं हो सकता। यह स्कन्ध का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभाग है।

परमाणु—प्रदेश और परमाणु एक ही हैं, परन्तु अन्तर इतना ही है कि जब तक वह स्कन्ध से संलग्न रहता है, तब तक प्रदेश और जब स्कन्ध से अलग हो जाता है, तब उसे परमाणु कहते हैं। "स्कन्धसंयुक्त प्रदेश, स्कन्ध वियुक्त परमाणु।"

पुद्गलास्तिकाय में स्कन्ध, देश, प्रदेश का व्यवहार स्पष्ट परिलक्षित हो जाता है। किन्तु धर्मास्तिकाय आदि अमूर्त पदार्थों में यह सब व्यवहार बुद्धि-परिकल्पित होता है। क्योंकि वे मूलतः अखण्ड पदार्थ हैं। अखण्ड पदार्थ अनादि अनन्त होता है, वह किन्हीं अवयवों से मिल कर नहीं बनता। अतः उसमें देश और प्रदेश आदि मात्र बुद्धि-परिकल्पित ही होते हैं, वास्तविक



व्याख्या

पुण्य सुख रूप होता है। पुण्य क्या है? शुभ योग से बंधने वाला शुभ कर्म। पुण्य से आरोग्य, सम्पत्ति, रूप, कीर्ति, दीर्घ आयुष्य और सुपरिवार आदि सुख के साधन, जीव को उपलब्ध होते हैं।

यहां पुण्य के जो नव भेद किए गए हैं, वे वास्तव में पुण्य के भेद नहीं, किन्तु पुण्य के कारण हैं, जो नव विभाग में विभक्त किए गए हैं।

जीव इन नव कारणों से पुण्य का बन्ध कर सकता है। किसी दुःखित को अथवा सदाचारी व्यक्ति को स्थान, शय्या और वस्त्र देने से, शरीर से किसी की सेवा करने से, मधुर एवं हितकर वाणी बोलने से, शुभ विचारों का चिन्तन करने से और किसी पूज्य पुरुष को वन्दन करने से।

पुण्य मनुष्यगति, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, शुभ वर्ण शुभ गंध, शुभ रस, शुभ स्पर्श, सौभाग्य, सुस्वर, आदेय, यश आदि ४२ प्रकार से भोगा जाता है। पुण्य को बांधते समय दुःख और भोगते समय सुख मिलता है। आत्म विकास में पुण्य कथंचित् निमित्त है, अतः उपादेय है, परन्तु साधना की उच्च अवस्था में पुण्य भी हेय है।

पाप तत्त्व के अठारह् भेद

१ प्राणातिपात (हिंसा)
२ मृषावाद (झूठ)
३ अदत्तादान (चोरी)
४ मैथुन (व्यभिचार)
५ परिग्रह (ममताभाव)
६ क्रोध
७ मान
८ माया
९ लोभ
१० राग (मनोज्ञ वस्तु पर स्नेह)
११ द्वेष (अमनोज्ञ वस्तु पर द्वेष)
१२ कलह (क्लेश, झगडा)
१३ अभ्याख्यान (झूठा कलंक लगाना)
१४ पैशुन्य (दूसरे की चुगली करना)
१५ पर-परिवाद (अवणवाद, निन्दा)
१६ रति-अरति (शब्दादि मनोज्ञ पर प्रीति,
अमनोज्ञ पर अप्रीति)

१७ माया मृषा (कपट-सहित मिथ्या भाषण)
१८ मिथ्यादर्शन शल्य (कुदेव, कुगुरु, और कुधर्म पर श्रद्धा)

व्याख्या

अशुभ योग से बंधने वाले अशुभ कर्म को पाप कहते हैं। क्योंकि वह आत्मा को मलिन बनाता है। पाप के उदय से जीव को दुख और पीडा मिलती है। पाप बांधते समय सुखकर किन्तु भोगते समय दुःखकर प्रतीत होता है।

अठारह प्रकार से पाप बांधा जाता है, और ज्ञानावरण दर्शनावरण, असातावेदनीय, मोहनीय, नरक गति, तिर्यंचगति, अशुभ वर्ण आदि ८२ प्रकार से भोगा जाता है। पापस्थानों के सेवन से जीव भारी हो जाता है, और नीच गति में जाता है। इनके त्याग से जीव हल्का हो जाता है, और उच्च गति प्राप्त करता है। पाप हेय ही होता है, कभी उपादेय नहीं होता।

पाप तत्त्व के ये अठारह भेद पाप बन्ध के कारण हैं। कारण में कार्य का उपचार मानकर ही पापतत्त्व के भेद बनाए गए हैं।

आस्रव तत्त्व के बीस भेद

पांच अव्रत—

१ प्राणातिपात
२ मृषावाद

३ अदत्तादान
४ मैथुन
५ परिग्रह

पांच इन्द्रिय—

१ श्रोत्रेन्द्रिय प्रवृत्ति
२ चक्षुरिन्द्रिय प्रवृत्ति
३ घ्राणेन्द्रिय प्रवृत्ति
४ रसनेन्द्रिय प्रवृत्ति
५ स्पर्शनेन्द्रिय प्रवृत्ति

पाँच आस्रव—

१ मिथ्यात्व आस्रव
२ अविरति आस्रव
३ प्रमाद आस्रव
४ कषाय आस्रव
५ अशुभ योग आस्रव

तीन योग—

१ मन प्रवृत्ति
२ वचन प्रवृत्ति
३ काय प्रवृत्ति



दो अयतना—

1 भाण्डोपकरण अयतना से लेना, रखना
२ सूचि कुशाग्र मात्र, अयतना से लेना, रखना।

व्याख्या

जिन कारणों से द्वारा आत्मा में कर्म मल आता है, वे कारण आस्रव कहलाते है। जीव रूप तालाब में, कर्म रज रूप जल, हिंसा असत्य आदि आस्रव द्वार रूप नाली से आता रहता है। आस्रव से आत्मा मलिन बनता है क्योंकि आस्रव से कर्मों का निरन्तर सञ्चय होता रहता है।

हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, व्यभिचार करना और परिग्रह का सचय करना—ये पाँच अव्रत रूप आस्रव है।

पाँच इन्द्रियों को यदि वश में नहीं रखा जाता, उनका निग्रह नहीं किया जाता, उन पर सयम का अकुश नहीं रखा जाता, यदि वे खुली छोड़ दी जाती है, तो वे कर्मबन्ध में निमित्त होने से आस्रवरूप हैं।

विपरीत श्रद्धान, अविरति, (असंयम), प्रमाद, कषाय और अशुभ योग—ये पाचो आसव रूप है।

मन, वचन और काय की अशुभ प्रवृत्ति भी आस्रव रूप है। कर्म बन्धन का कारण है।

रजोहरण, पात्र आदि भाण्डोपकरण और कुश = तृण,

सूचि = सूई पाट आदि अन्य कोई भी वस्तु यदि अविवेक से ली जाती है और अविवेक से रखी जाती है, तो यह भी आस्रव है।

इन बीस कारणों से आत्मा कर्मों का संचय करता है, अत ये आस्रव हैं। आस्रव ससार का कारण है। इससे ससार की वृद्धि होती है।

सवर के बीस भेद

पाच व्रत—

१ प्राणातिपात विरमण
२ मृषावाद विरमण
३ अदत्तादान विरमण
४ अब्रह्मचर्य विरमण
५ परिग्रह विरमण

पाँच इन्द्रिय—

१ श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह
२ चक्षुरिन्द्रिय निग्रह
३ घ्राणेन्द्रिय निग्रह
४ रसनेन्द्रिय निग्रह
५ स्पर्शनेन्द्रिय निग्रह



पाँच सवर—

१ सम्यक्त्व सवर
२ व्रत सवर
३ अप्रमाद सवर
४ अकषाय सवर
५ शुभयोग सवर

तीन योग—

१ मनो निग्रह
२ वचन निग्रह
३ काय निग्रह

दो यतना—

१ भाण्डोपकरण, यतना से लेना, रखना।
२ सूचि कुशाग्र मात्र, यतना से लेना, रखना।

व्याख्या

आस्रव का निरोध सवर है। सवर आस्रव का विरोधी तत्व है। सवर का अर्थ है, सवरण अर्थात् संयम। जिन कारणो से आस्रव को रोका जाता है, वे सवर कहे जाते है।

जीव रूप तालाब मे, कर्म-रज रूप जल को आने से सवर रूप डाट के द्वारा रोकना, उसे सवर कहते हैं। सवर से आत्मा

शुद्ध एवं निर्मल बनता है। क्योंकि संवर की साधना से कर्म मल आत्मा में नहीं आ पाता।

हिंसा से विरति, असत्य से विरति, चोरी से विरति, अब्रह्मचर्य से विरति और परिग्रह से विरति—ये पाँच व्रत रूप संवर हैं। संवर धर्म का कारण है।

पाँच इन्द्रियों का निग्रह करना, उनकी अशुभ प्रवृत्ति को रोकना—यह पाँच इन्द्रियों का निरोधरूप संवर है। निगृहीत इन्द्रिय संवररूप है।

यथार्थ श्रद्धान, विरति (व्रत), अप्रमाद, अकषाय और शुभ योग—ये पाँच संवर हैं। क्योंकि इनसे आत्मा की शुद्धि होती है।

मनोनिरोध, वचन निरोध और काय-संयम—ये तीनों भी संवर रूप हैं। इन तीनों योगों का गुप्तत्व संवर है।

यदि तत्त्व-दृष्टि से देखा जाए, तो योग मात्र आस्रव है। भले ही वह शुभ हो, या अशुभ। शुभ योग पुण्यास्रव है और अशुभ योग पापास्रव। यहाँ शुभ योग को जो संवर कहा है, वह अशुभ से निवृत्ति-रूप है। अतः शुभ की मुख्यता में सहायक है।

रजोहरण, पात्र आदि भण्डोपकरण तथा सूई आदि अन्य किसी भी वस्तु को यतना से लेना और यतना से रखना—यह भी संवर है।

इन बीस कारणों से आत्मा आस्रव को रोकता है। अतः ये संवर हैं। संवर मोक्ष का कारण है। इसकी शुद्ध साधना से संसार के बन्धन कट जाते हैं।



निर्जरा तत्त्व के बारह भेद

१ अनशन तप (उपवास आदि)
२ ऊनोदरी तप (भूख से कम खाना)
३ भिक्षाचरी तप (निर्दोष भिक्षा ग्रहण करना)
४ रसपरित्याग तप (सुस्वादु भोजन का त्याग)
५ कायक्लेश तप (वीरासन आदि करना।
६ प्रतिसलीनता तप (एकान्त शय्यासन)
७ प्रायश्चित तप (दोषो की आलोचनादि के द्वारा शुद्धि)
८ विनय तप (गुरु आदि की भक्ति)
९ वैयावृत्य तप (आचार्य आदि की सेवा)
१० स्वाध्याय तप (शास्त्र वाचनादि)
११ ध्यान तप (मन की एकाग्रता)
१२ व्युत्सर्ग तप (शरीर के व्यापार आदि का त्याग)

व्याख्या

कर्म-वर्गणा का ग्रात्मा से एक देश से दूर हो जाना, निर्जरा है। जीव रूप वस्त्र को कर्म रूप मल लगा हुआ है। ज्ञान रूप जल और तप रूप साबुन से उसको शुद्ध किया जाता है। यह निर्जरा तत्त्व को समझने के लिए एक रूपक है।

निर्जरा दो प्रकार की है—सकाम और अकाम। संवर-पूर्वक निर्जरा सकाम है, और बिना विवेक के, बिना संयम के जो कष्ट सहन किया जाता है, वह अकाम निर्जरा है।

बद्ध कर्मों का क्षय तप से होता है। अतः निर्जरा की व्याख्या करते हुए प्रस्तुत बोल में अनशन आदि छह प्रकार का बाह्य तप और प्रायश्चित्त आदि छह प्रकार का आभ्यन्तर तप बताया गया है। यह तप कर्म निर्जरा का हेतु है, कारण है। कारण में कार्य का उपचार करने से यहां पर तप को निर्जरा कहा गया है।

कर्म परमाणुओं का आत्मा से एक देश से दूर हो जाना निर्जरा है, और सर्वथा कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है। देश मुक्ति निर्जरा और सर्व मुक्ति मोक्ष है।

बन्ध तत्त्व के चार भेद

१ प्रकृति बन्ध
२ स्थिति बन्ध
३ अनुभाग बन्ध
४ प्रदेश बन्ध

व्याख्या

कर्म वर्गणा और आत्मा का अन्योऽन्यानुप्रवेश रूप जो परस्पर सम्बन्ध है, वह बन्ध कहाता है। कषाय और योग से जीव कर्म पुद्गलों को ग्रहण करता है। नीर और क्षीर की तरह अथवा अग्नि और लोह पिण्ड की तरह कर्म पुद्गल और आत्म-

प्रदेशों का जो एकीभाव है, उसे बन्ध कहते हैं। जैसे कोई व्यक्ति शरीर पर तेल लगाकर धूल में लेटता है, तो धूल उसके शरीर के चिपक जाती है। इसी प्रकार कषाय और योग से आत्म प्रदेश में जब कम्पन होता है, तब आत्मा के साथ कर्म का बन्ध होता है। बन्ध तत्त्व के चार भेद हैं—

प्रकृति बन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गल में ज्ञानावरणादि रूप भिन्न भिन्न स्वभाव का अर्थात् शक्ति का पैदा होना।

स्थिति बन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गल में अमुक काल तक अपने स्वभाव का परित्याग न करते हुए जीव के साथ लगे रहने की काल मर्यादा।

अनुभाग बन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म-पुद्गल में तीव्र एवं मन्द फल देने की शक्ति। इसको अनुभाव बन्ध और रस बन्ध भी कहते हैं।

प्रदेश बन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म-पुद्गल के परमाणुओं का कम या अधिक होना अर्थात् जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणु वाले कर्म-स्कन्ध का सम्बन्ध होना।

इन चार बन्धों में से प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध योग से होता है, और स्थिति-बन्ध तथा अनुभाग बन्ध कषाय से होता है।

कर्म बन्ध के पाँच हेतु हैं—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। परन्तु मुख्य दो हैं—कषाय और योग।

मोक्ष तत्त्व के चार भेद

१	सम्यग् ज्ञान	३	सम्यक् चारित्र
२	सम्यग् दर्शन	४	सम्यक् तप

व्याख्या

नव तत्त्वों में यह अन्तिम तत्व है। संवर और निर्जरा की साधना से आत्मा मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

बन्ध और बन्ध के कारणों का जब अभाव हो जाता है, और जब आत्म विकास पूर्ण हो जाता है, तब आत्मा की उस सर्वथा और सर्वदा शुद्ध स्थिति को मोक्ष कहा जाता है। आत्म गुणों का पूर्ण विकास ही वस्तुतः मोक्ष है।

मोक्ष, मुक्ति और निर्वाण—एकार्थक शब्द हैं। कर्म-बद्ध आत्मा का कर्म मुक्त हो जाना—यह मोक्ष है। मोक्ष आत्मा की एक पूर्ण अखण्ड शुद्ध अवस्था है। जहाँ पूर्णता होती है, वहाँ विभिन्न प्रकार के भेद एवं प्रकार नहीं होते। इसीलिए प्रस्तुत में मोक्ष तत्त्व के भेद बताते हुए उसकी प्राप्ति के चार साधन बताए गए हैं।

इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति के उपर्युक्त चार साधन शास्त्र में कहे गए हैं—सम्यगदर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र और विवेक पूर्वक तप। जीव इन साधनों से मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

जीव का स्वभाव ऊर्ध्व गमन है। वह जो अधोगमन और तिर्यग् गमन करता है, उसमें जीव के कर्म कारण हैं। जैसे लेप सहित तुम्बा जल में नीचे बैठ जाता है, परन्तु उस पर से मिट्टी



का मल हट जाने से बड़ी तुम्बा ऊपर पानी की सतह पर आ जाता है। यही स्थिति आत्मा की भी है। कर्म सहित आत्मा नीचे अधोगति में जाता है और कर्म रहित होने पर यही आत्मा अपनी सहज स्वभाव गति से ऊपर चला जाता है।

एक बार जब आत्मा मुक्त हो जाता है, तो फिर वह कभी संसार में नहीं आता। क्योंकि मुक्त आत्मा में संसार का कारण ही नहीं रहता। जैसे दग्ध बीज को कितना भी पानी दिया जाए कितनी भी उर्वर भूमि में बोया जाए, पर वह कभी अंकुरित नहीं हो सकता, वैसे ही जिस आत्मा में से बन्ध और बन्ध के कारणों का अभाव हो गया है, जो मुक्त हो गया है, वह फिर कभी संसार में नहीं आता।

जिन जीवों में मोक्ष पाने की योग्यता है, वे ही मोक्ष प्राप्त करते हैं, उन्हें भव्य कहते हैं। जिन जीवों में मोक्ष पाने की योग्यता नहीं, वे अभव्य हैं।

सब तत्त्वों में मुख्य तत्त्व दो हैं—जीव और अजीव। शेष सभी तत्त्व जीव और अजीव की पर्याय विशेष ही हैं। उनका अपना पदार्थ रूप से स्वतन्त्र कोई अस्तित्व नहीं।

जिसमें चेतना है, वह जीव है और जिसमें चेतना नहीं, वह अजीव है। ये दोनों स्वतन्त्र तत्त्व हैं।

पुण्य और पाप का समावेश अजीव तत्त्व में हो जाता है। क्योंकि पुण्य और पाप पुद्गल रूप हैं। पुण्य शुभ पुद्गल और पाप अशुभ पुद्गल है।

अथवा इन दोनों का अन्तर्भाव आस्रव और बन्ध में भी किया जा सकता है। शुभ आस्रव और अशुभ आस्रव, तथा शुभ बन्ध और अशुभ बन्ध। इनमें शुभ पुण्य है और अशुभ पाप है।

आस्रव और बन्ध तत्व तो स्पष्ट ही पुद्गल हैं, पुद्गल की पर्याय विशेष ही हैं। अत इनका समावेश अजीव तत्व में हो जाता है। इस प्रकार पुण्य और पाप, आस्रव और बन्ध–ये चार तत्त्व अजीव तत्त्व में आ जाते हैं।

संवर निर्जरा और मोक्ष—ये तीनों जीव की ही पर्याय विशेष हैं। संवर जीव की आस्रव निरोध रूप शुद्धि है। निर्जरा भी आंशिक कर्म-क्षय रूप एक प्रकार की शुद्धि ही है, और मोक्ष तो जीव की पूर्ण शुद्धि का ही नाम है। अत संवर, निर्जरा और मोक्ष का समावेश जीव तत्त्व में हो जाता है।

अत संक्षेप में दो ही तत्त्व हैं—जीव और अजीव। शेष इन दोनों का ही विस्तार है।

इन नव तत्त्वों को ज्ञेय, उपादेय और हेय इन तीन भागों में भी विभक्त किया जा सकता है।

जीव और अजीव ज्ञेय हैं। पाप, आस्रव और बन्ध हेय है। पुण्य कथंचित् हेय और कथंचित् उपादेय है। संवर, निर्जरा तथा मोक्ष उपादेय है। ज्ञेय वह है, जो जानने के योग्य है। उपादेय वह है, जो ग्रहण करने के योग्य है। हेय वह है, जो छोड़ने के योग्य है।

★



१५

बोल पन्द्रहवाँ : आत्मा आठ

१ द्रव्य आत्मा	५ ज्ञान आत्मा
२ कषाय आत्मा	६ दर्शन आत्मा
३ योग आत्मा	७ चारित्र आत्मा
४ उपयोग आत्मा	८ वीर्य आत्मा

व्याख्या

आत्मा एक शाश्वत तत्त्व है। वह अतीत में भी था, वर्तमान में भी है और भविष्य में भी रहेगा। उसकी न उत्पत्ति है और न उसका विनाश। फिर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता, कि उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन होता ही नहीं। द्रव्य से नित्य होकर भी आत्मा पर्याय से अनित्य है, परिवर्तनशील है। जीव के परिणामों का कोई अन्त नहीं है। प्रस्तुत बोल में मुख्य आत्माओं की आठ निर्देश का कथन है।

द्रव्य आत्मा—आत्मा असंख्यात प्रदेशों का समुदाय है। आत्मा अखण्ड है, वह कोई असंख्य प्रदेशों से संयुक्त रूप में निर्मित नहीं हुआ है। प्रदेश, कल्पनामात्र बुद्धि परिकल्पित है। ये प्रदेश आत्मा से पृथक्तया विभाजित नहीं किए जा सकते।

कषाय आत्मा—कषाय चार हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। कषाय युक्त आत्मा को कषाय आत्मा कहा है। उपशान्त और

क्षीण कषाय आत्माओं को छोड़कर शेष समस्त संसारी जीवों में यह आत्मा होती है।

योग आत्मा—योग मन, वचन एवं काय का व्यापार है। योग युक्त आत्मा को योग आत्मा कहते हैं। अयोगी केवली और सिद्ध में यह आत्मा नहीं होती। शेष सभी जीव योग वाले हैं।

उपयोग आत्मा—उपयोग अर्थात् ज्ञान और दर्शन। उपयोग युक्त आत्मा को उपयोग आत्मा कहते हैं। उपयोग आत्मा सिद्ध और संसारी सभी जीवों में होती है। क्योंकि उपयोग आत्मा का लक्षण है। अतः उपयोग शून्य कोई आत्मा नहीं हो सकती।

ज्ञान आत्मा—ज्ञान आत्मा का निज गुण है। ज्ञान युक्त आत्मा को ज्ञान आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सभी जीवों में है। परन्तु जब ज्ञान का अर्थ सम्यग्ज्ञान करें, तब यह आत्मा केवल सम्यग्दृष्टि जीवों में रहेगी। क्योंकि मिथ्या दृष्टि में ज्ञान नहीं, अज्ञान होता है।

दर्शन आत्मा—दर्शन अर्थात् सामान्य बोध। दर्शन-युक्त आत्मा को दर्शन आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सभी जीवों में होती है। अथवा सम्यग्दर्शन रूप आत्मा सम्यग् दृष्टि जीवों में ही होती है।

चारित्र आत्मा—चारित्र अर्थात् अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति। चारित्र युक्त आत्मा को चारित्र आत्मा कहते हैं। यह आत्मा विरति-सम्पन्न जीवों में होती है।

वीर्य आत्मा—वीर्य अर्थात् जीव की शक्ति-विशेष। वीर्य-युक्त आत्मा को वीर्य आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सभी जीवों में होती है। अन्तर केवल इतना ही है कि संसारी आत्माओं का वीर्य सकरण अर्थात् क्रियारूप वीर्य है, और सिद्ध आत्माओं का वीर्य, लब्धि अर्थात् शक्ति रूप वीर्य है।

★

१६

बोल सोलहवाँ : दण्डक चौबीस

सातों नरक का एक दण्डक—

१ रत्नप्रभा
२ शर्करा प्रभा
३ बालुका प्रभा
४ पङ्क प्रभा
५ धूमप्रभा
६ तम प्रभा
७ महातम प्रभा

दश भवन पति के दश दण्डक—

१ असुरकुमार
२ नागकुमार
३ सुवर्णकुमार
४ विद्युत्कुमार
५ अग्निकुमार
६ द्वीपकुमार
७ उदधिकुमार
८ दिशाकुमार
९ पवनकुमार
१० स्तनितकुमार

पांच स्थावर के पांच दण्डक—

१ पृथ्वी काय
२ अप् काय
३ तेजस् काय
४ वायुकाय
५ वनस्पति काय



तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक—

१ द्वीन्द्रिय
२ त्रीन्द्रिय
३ चतुरिन्द्रिय

अन्तिम पाच दण्डक—

१ तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का एक दण्डक
१ मनुष्य का एक दण्डक
१ व्यन्तर देव का एक दण्डक
१ ज्योतिष देव का एक दण्डक
१ वैमानिक देव का एक दण्डक

व्याख्या

जीव अपनी शुभ और अशुभ प्रवृत्ति के कारण शुभाशुभ कर्मों का संचय करता रहता है। फिर उन शुभ एव अशुभ कर्मों का फल भोगने के लिए चार गतियों मे परिभ्रमण करता है। अत जहाँ जीव स्वकृत कर्मों का फल भोगता है, उसे दण्ड कहते हैं। अर्थात् कर्म फल या दण्ड भोगने के स्थान को इस योग में २४ भागों में विभक्त करके उन स्थानों का नाम दण्डक रख दिया गया है।

नरक गति का दण्डक एक, तिर्यञ्च गति के नव, मनुष्यगति का एक, और देवगति के तेरह। इस प्रकार सब मिलाकर चौबीस दण्डक होते हैं।

★





१७

बोल सत्तरहवाँ • लेश्या छह

१ कृष्ण लेश्या ४ तेजो लेश्या
२ नील लेश्या ५ पद्म लेश्या
३ कापोत लेश्या ६ शुक्ल लेश्या

व्याख्या

जीव के शुभाशुभ परिणाम को लेश्या कहते हैं। अथवा जिस परिणाम से कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध हो उसे लेश्या कहते हैं। लेश्या के दो भेद हैं भाव और द्रव्य। भाव लेश्या विचार रूप और द्रव्य लेश्या पुद्गल रूप होती है।

अथवा लेश्या के दो भेद हैं—धर्म लेश्या और अधर्म लेश्या। पहले की तीन अधर्म लेश्या और अगली तीन धर्म लेश्या। इन्हें अशुभ लेश्या और शुभ लेश्या भी कहते हैं।

कृष्ण लेश्या—

> अतिरौद्रः सदा क्रोधी, मत्सरी धर्मवर्जितः।
> निर्दयी वैर-संयुक्तः, कृष्ण-लेश्याऽधिको नरः॥

कृष्ण लेश्या वाले जीव के विचार अत्यन्त क्रूर होते हैं, वह क्रोधी होता है, वह ईर्ष्यालु होता है, उसका जीवन धर्म शून्य होता है, वह दया रहित होता है, और उसके मन में सदा वैर-विरोध की भावना रहती है।

नील लेश्या—

> अलसो मन्द बुद्धिश्च, स्त्री-लुब्ध पर वञ्चक ।
> कातरश्च सदा मानी, नील-लेश्याऽधिको नर ॥

नील लेश्या वाला जीव आलसी, मन्द बुद्धि वाला, कामुक, मायावी, डरपोक और सदा अभिमानी होता है।

कापोत लेश्या—

> शोकाकुल सदा रुष्ट, पर निंदात्मशंसक ।
> सग्रामे प्रार्थते मृत्यु, कापोतलेश्याधिकोनर ॥

कापोत लेश्या वाला जीव शोक से व्याकुल रहता है, सदा क्रोध म भरा रहता है। पर निन्दा और स्व प्रशंसा किया करता है, और सग्राम में जाकर कायर बन जाता है मृत्यु चाहता रहता है।

तेजो लेश्या—

> विद्यावान् करुणा युक्त, कार्याऽकार्य विचारक ।
> लाभाऽलाभे सदा प्रीत, तेजोलेश्याधिको नर ॥

तेजोलेश्या वाला जीव विद्या प्रेमी होता है, करुणाशील होता है, कर्तव्य और अकर्तव्य मे विवेक रखता है, और लाभ तथा अलाभ मे सदा प्रसन्न रहता है।

पद्म लेश्या—

> क्षमावान् निरतस्त्यागी, गुरु-देवेषु भक्तिमान
> शुद्ध चित्त-सदाऽऽनन्दी, पद्म-लेश्याधिको नर

पद्म लेश्या वाला जीव क्षमाशील और त्याग निरत होता है, देव और गुरु की भक्ति करता है, उसका चित्त सदा प्रसन्न रहता है, और वह सदा प्रमुदित रहता है।

शुक्ल लेश्या—

> राग द्वेष विनिर्मुक्त, शोक निन्दा विवर्जित।
> परमात्मभावसम्पन्न, शुक्ल-लेश्याधिको नरः॥

शुक्ल लेश्या वाला जीव राग और द्वेष से रहित होता है। अथवा मन्द राग और मन्द द्वेष वाला होता है। वह शोक और निन्दा के वेग से भी परे रहता है। और परम शुक्ल लेश्या वाला अन्ततः परमात्म दशा को प्राप्त कर लेता है। यह आत्मा परम शुद्ध आत्मा होता है।

*

१८
बोल अठारहवाँ : दृष्टि तीन

१ सम्यग्दृष्टि
२ मिथ्यादृष्टि
३ मिश्रदृष्टि

व्याख्या

यहाँ पर दृष्टि का अर्थ है—दर्शन। संसार मे जितने भी जीव है, उनमे इन तीन दृष्टियो मे से एक न एक दृष्टि अवश्य मिलती है। ये दृष्टियाँ समुच्चयरूप मे चारों गतियो के जीवो मे उपलब्ध होती है।

सम्यग् दृष्टि—मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के क्षय से, उपशम से अथवा क्षयोपशम से आत्मा में जो एक आत्मानुलक्षी शुद्ध परिणाम उत्पन्न होता है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

मिथ्या दृष्टि—मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से जीव में जब अदेव में देव बुद्धि, अधर्म में धर्म बुद्धि और अगुरु में गुरुबुद्धि हो जाती है, तब उस दृष्टि को मिथ्या दृष्टि कहते हैं।

मिश्र दृष्टि—मिश्र मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा में जो सत्यासत्य मिश्रित दोलायमान स्थिति पैदा होती है, उसे मिश्र दृष्टि कहते हैं। इस दृष्टि में जीव न एकान्त सत्योन्मुख होता है, और न एकान्त असत्योन्मुख। किन्तु सत्य और असत्य से विलक्षण एक भिन्न मिश्रित-सी अवस्था होती है।

*

१६

बोल उन्नीसवाँ ध्यान चार

१ आर्त ध्यान
२ रौद्र ध्यान
३ धर्म ध्यान
४ शुक्ल ध्यान

व्याख्या

चित्त को एकाग्र करना ध्यान है। अपनी चिन्तन धारा को अनेक विषयों से समेटकर किसी एक वस्तु या विषय पर एकाग्र कर लेना, स्थिर कर लेना ही ध्यान है।



ध्यान चार प्रकार का है। पहले दो संसार के कारण है। अतः वे हेय है, त्याज्य है। अन्त के दो मोक्ष के कारण हैं। अतः वे उपादेय हैं, ग्रहण करने योग्य हैं।

ध्यान, ध्याता और ध्येय—इसको त्रिपुटी कहते है। ध्यान करने वाला ध्याता होता है। ध्येय अर्थात् जिसका ध्यान किया जाए, जिसका चिन्तन किया जाए। ध्याता ध्यान के द्वारा ध्येय को प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसको ध्यान की साधना कहते हैं।

ध्यान के दो भेद है—अशुभ और शुभ। पहले के दो ध्यान अशुभ हैं, पिछले दो शुभ हैं।

आर्त ध्यान—मनोज्ञ एवं प्रिय वस्तु के वियोग मे और अमनोज्ञ एवं अप्रिय वस्तु के संयोग मे, चित्त मे जो एक प्रकार की अनवरत एकाग्र चिन्तना होती है, उसको आर्तध्यान कहते हैं।

रौद्र ध्यान—हिंसा मे, असत्य मे, चोरी मे और धन आदि के ममत्वभाव मे, मन को एकाग्र करना, मन को जोडना, रौद्र ध्यान है। इसमे परिणाम अत्यन्त क्रूर होते हैं। इसमे, जीव के रुद्र अर्थात् भयकर एवं निर्दय भाव रहते हैं, अतः इस को रौद्र ध्यान कहते हैं।

धर्म ध्यान—जिसमे श्रुत और चारित्र रूप धर्म का चिन्तन किया जाता है, उसे धर्म ध्यान कहते है। सूत्रार्थ का चिन्तन करना, व्रतों का विचार करना, तथा संसार की असारता का मनन करना—यह धर्म ध्यान है।

२५
बोल पच्चीसवाँ : चारित्र पाँच

१ सामायिक चारित्र
२ छेदोपस्थापन चारित्र
३ परिहार विशुद्धि चारित्र
४ सूक्ष्म सम्पराय चारित्र
५ यथाख्यात चारित्र

व्याख्या

आत्मा को निज स्वरूप में स्थिर रखने का प्रयत्न चारित्र है। चारित्र, विरति, संयम, और संवर ये सब एकार्थक शब्द हैं। चारित्र का अर्थ है—अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति। सावद्य व्यापार के निरोध को चारित्र कहा जाता है।

शास्त्रीय भाषा में चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय से, उपशम से और क्षयोपशम से होने वाले विरति परिणाम को चारित्र कहते हैं। अथवा आत्मा का सावद्य योग से निवृत्त होकर निरवद्य योग में प्रवृत्त होना भी चारित्र कहा जाता है। चारित्र के सामायिक आदि पाँच भेद हैं।

सामायिक चारित्र—सामायिक अर्थात् सम भाव। सम भाव रूप आत्मा को सामायिक चारित्र कहते हैं। अथवा शास्त्र

प्रवृत्ति का परित्याग और निरवद्य प्रवृत्ति का आसेवन सामायिक चरित्र है।

छेदोपस्थापन चारित्र—जिस चारित्र मे पूर्व गृहीत चारित्र-पर्याय का छेद एव महाव्रतों मे उपस्थापन अर्थात् आरोपण होता है, उसे छेदोपस्थापन चारित्र कहते हैं। यह चारित्र पूर्व चारित्र को छेदन करके आता है, अत इसे छेदोपस्थापन कहते हैं।

उक्त चारित्र के दो भेद हैं—निरतिचार और सातिचार। मध्य के २२ तीर्थङ्करों मे से जब २३ वें तीर्थङ्कर के मुनि या आर्यायें, २४ वें तीर्थङ्कर के शासन मे सम्मिलित होते हैं, तब सामायिक चारित्र का छेदन कर महाव्रतारोपण रूप छेदोपस्थापन चारित्र ग्रहण करते हैं, यह निरतिचार अर्थात् दोष-रहित स्थिति मे छेदोपस्थापन चारित्र का ग्रहण है। इसी प्रकार प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के शासन में सर्वप्रथम सामायिक चारित्र ग्रहण किया जाता है, अनन्तर अमुक काल के बाद, जो बड़ी दीक्षा के रूप में महाव्रतारोपण किया जाता है, यह भी निरतिचार छेदोपस्थापन चारित्र है। और जब किसी दोष विशेष के कारण पूर्व-दीक्षा पर्याय का छेदन कर प्रायश्चित्त रूप मे आत्मशुद्धि के लिए पुन महाव्रतारोपण की क्रिया की जाती है, वह सातिचार छेदोपस्थापन चारित्र है।



परिहार विशुद्धि चारित्र—जिस चारित्र में परिहार नामक विशेष तप किया जाता है, उसे परिहार विशुद्धि चारित्र कहते हैं। परिहार तप से आत्मा की विशेष शुद्धि होती है। परिहार अर्थात् संघ से पृथक् होकर विशिष्ट तपस्या से आत्मा की शुद्धि करना, परिहार विशुद्धि है।

परिहार नामक तप की विधि संक्षेप में इस प्रकार है—

"नव साधुओं का गण परिहार तप प्रारम्भ करता है। इनमें से चार तप करते हैं, और चार उनकी वैयावृत्य (सेवा) करते हैं, तथा एक उनके गुरु (निर्देशक) रूप में रहता है।

पहले चार साधु छह मास तक उपवास, बेला, तेला, चौला, पचौला, तथा आयंबिल आदि तप करते हैं। फिर सेवा करने वाले छह मास तक तप करते हैं, और तप करने वाले सेवा करते हैं। फिर गुरु पद पर रहा हुआ साधु भी छह मास तक तप करता है। इस प्रकार अठारह मास में इस परिहार तप का कल्प पूर्ण होता है।

सूक्ष्म सम्पराय चारित्र—सम्पराय का अर्थ कषाय होता है। कषाय चार हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। परन्तु इस चारित्र में केवल सूक्ष्म सज्वलन रूप लोभ कषाय ही शेष रह जाता है। अतः इसको सूक्ष्म सम्पराय चारित्र कहते हैं। यह चारित्र दसवें गुणस्थान का है।

यथाख्यात चारित्र—सर्वथा विशुद्ध चारित्र को अर्थात् अति चार रहित चारित्र को यथाख्यात चारित्र कहते है। इसमें कषाय का उदय नही रहता। अत यह विशुद्ध चारित्र है। अथवा कषाय मुक्त साधु का चारित्र यथाख्यात चारित्र है। इसको वीतराग चारित्र भी कहते है। ग्यारहवे गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक का चारित्र यथाख्यात चारित्र है। यद्यपि ग्यारहवें गुणस्थान म कषाय की (सूक्ष्म लोभ कषाय की) सत्ता रहती है, तथापि वहाँ उसका उदय नही है। अत यह भी यथाख्यात चारित्र (विशुद्धतम चारित्र) कहा जाता है।

★